योग अमृत

संत श्री आशारामजी महाराज

योग अमृत

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज
संत श्री आशारामजी महाराज

सबसे बड़ा पाप है अपने को दुर्बल समझना। योग करो, साधना करो, कुछ भी करो, मगर पहले अपनी सर्व-शक्तिमत्ता का अनुभव करलो–साक्षात्कार करलो...।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा रोड़, साबरमती, अहमदाबाद–५

YOG AMRUT
Sant sri Asharamji Maharaj

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा रोड़, साबरमती, अहमदाबाद–५.

प्रथम आवृत्ति :
उत्तरायण महोत्सव
१४ जनवरी १९८०

मूल्य :
रू. १–७०

मुद्रक :
जयन्तिलाल मणिलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
अहमदाबाद–१

निवेदन

'योग–साधना' मनुष्य के लिये बहुत रहस्यपूर्ण एवं महत्वपूर्ण विषय है। कई लोग जो इस विषय में जानकारी नहीं रखते और लोगों को मार्गदर्शन देने का दुःसाहस करते हैं वे 'नीम हकीम खतरे जान' वाली उक्ति के अनुसार कई बार साधकों का अहित भी कर जाते हैं। अतः इस सम्बंध में अनुभवी महापुरुषों का मार्ग दर्शन बहुत आवश्यक है।

यह छोटी सी पुस्तिका पूज्य श्री द्वारा उच्चारित की गई सहज अमृतवाणी का एक छोटा सा संकलन है। योग साधकों के लिए यह पुस्तिका अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

योग विषय में अधिक जानकारी के उत्सुक पाठक–वृंद हमारे द्वारा प्रकाशित 'योग लीला' पुस्तक मंगा कर पढ़ें। उसमें पूज्य श्री की साधना काल के यौगिक अनुभव एवं उनके सम्पर्क में आने वाले अन्यान्य साधकों के उत्तम यौगिक अनुभवों का भी समावेश है।

अधिक जानकारी अथवा मार्गदर्शन के लिये प्रत्यक्ष सांनिध्य प्राप्त करने का प्रयास करें।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति,

विषय-सूची

१. परम पुरुषार्थ ५

२. लक्ष्य सिद्धि की ओर १६

३. कुण्डलिनी-योग ४०

योग साधकों के लिये ध्यान रखने योग्य आवश्यक बातें ४७

कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने के कुछ सामान्य लक्षण ५३

अन्य बातें ५५

दुधी का तेल बनाने की विधि ५६

४. योग साधकों के अनुभव ५७

सूक्ष्म लोकों के मानवों का दर्शन किया ५७

मैं उन्हें पहचान नहीं पाया था ६२

योगसाधना कितना रहस्यपूर्ण विषय ६५

मुझे एक से दो बना दिया ६९

मिटने से मिलता है बनने से नहीं ७३

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज

परम पूज्य संत श्री आशारामजी महाराज

मरो मरो सब कोऊ कहे, मरना न जाने कोय ।

एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होय ॥

परम पुरुषार्थ

(मंगलवार २६-७-१९७९ भावनगर, गुजरात)

मनुष्य सदैव बाहर की परिस्थितियों को दोष देते हुए जीता है। यदि ऐसा होता, यह अनुकूलता होती तो मैं यह कर देता, मैं वह कर देता। सुधारक कहते हैं कि यदि हमारे साथ यह सुविधा होती तो हम दुनिया को हिला देते। सब बाहर देखते हैं, मगर भीतर–अपने भीतर कोई नहीं देखता। वस्तुतः जिसका भीतर ठीक हो जाय, उसका बाहर अपने आप ही ठीक हो जाता है। भीतर से जो अपने को अनुकूल बना लेता है उसके लिए बाहर की सब प्रतिकूलताएँ अनुकूलताओं में बदल जाती हैं।

बाहर का बेकग्राउन्ड उसे ही अनुकूल मिलता है जिसने अपना भीतर का बेकग्राउन्ड ठीक कर लिया है, जो भीतर से अपने आपको ढूँढ चुका है, जिसने भीतर से अपने आप को पा

लिया है । जो भीतर से शांत है, प्रसन्न है, उसे बाहर अशांति नजर आ नहीं सकती । उसे सर्वत्र खुशियाँ ही नजर आती हैं ।

हमेशा प्रसन्न रहना चाहिये । लेकिन हम तुरंत कह उठते हैं– क्या करें जी, हम हो गृहस्थी हैं । सुबह से शाम तक हम तो अपने काम धंधों में ही उलझे रहते हैं । हम प्रसन्न कैसे रह सकते हैं !....आप तो संत हैं, आपके पास तो काफी समय है ।

अरे, राजा जनक भी तो गृहस्थी था ! आपको तो केवल अपने एक परिवार का ख्याल रखना पड़ता है । उसको तो सारा राज्य का प्रबन्ध देखना पड़ता था । फिर भी वह प्रसन्न रहता था कि नहीं !....और संत ? संत तो सारे समाज के कल्याण को देखते हैं । संत बनना कोई सरल कार्य नहीं है ! 'मुफ्त का खाना सत्यानाश जाना ।' संत को तो जितना वह समाज से पाता है उसके बदले में समाज को कई गुना देना ही पड़ता है ।

एक साधु था । वह एक फार्म (खेत) में कुटिया बनाकर रहता था । फार्म का मालिक वह सम्पन्न शिष्य भी उसकी खूब सेवा करता था । साधु खूब माल–मिष्ठान्न खावें, खाली समय में चिलम पीये और अलमस्त पड़ा रहे । खा–पीकर गोल–मटोल हो गए था वो ।

एक बार संत कबीरदासजी उधर से निकले । उन्होंने अल-मस्त पड़े हुए उस साधु को देखा तो उसके पास चले आए

और धीरे से बातचीत में पूछा कि आप भक्तों से जो कुछ पाते हैं, उसके बदले में उनका कुछ कल्याण भी करते हैं कि नहीं ? वह साधु बोला, "कल्याण क्या, यह सेठ मेरा शिष्य है और मैं उसका गुरु हूँ । शिष्य से सेवा लेने का मेरा अधिकार है ।"

कबीरदासजी बोले, "यह तो ठीक है कि सेवा लेना आपका अधिकार है, पर उस सेवा के बदले में शिष्य का कल्याण करने का कर्तव्य भी आपका है, यह आप क्यों भूलते हैं ?"

यह सुनकर वह साधु जरा तैश में आ गया और बोला– "जाओ जाओ जी....,तुम सफेद कपड़े वाले हम साधुओं को उपदेश करते हो !"

बस, कबीरदासजी को कहने को अब कुछ बचा भी नहीं था । वे चल पड़े । काफी समय के बाद पुनः जब वे उसी रास्ते से जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि वह कुटिया तो खाली पड़ी है । कहाँ चला गया वह साधु ! लोगों से पूछने पर पता लगा कि उसका शरीर शांत हो गया है ।

कबीर तो योगी थे । उन्होंने ध्यान लगाया, तो पता लगा कि वही अलमस्त साधु बैल बन कर सामने वाले रहट में जुता हुआ है । हाँकने वाला पूंछ मरोड़कर लट्ठ मार–मार कर उसे हाँक रहा है । कबीर समझ गए कि इसने केवल खाया ही खाया है चुकाया नहीं, इसलिये अब बैल बन कर पिछला खाया हुआ चुका रहा है ।

योग में बहुत बल है। योगी क्या नहीं कर सकता ! योगी चाहे तो कहीं भी अपना दर्शन दे सकता है। वह चाहे तो अदृश्य हो सकता है। वह चाहे तो किसी के भी अंतःकरण के साथ सम्बंध स्थापित कर उससे बातचीत कर सकता है और उसको अपने कहने में चला सकता है।

तो कबीरजी ने ऐसी ही यौगिक युक्ति से उस बैल के कान में जाकर कहा, "कहिये भूतपूर्व महाराजजी !"

जानी पहचानी आवाज सुनकर बैल चौंका और पूर्व स्मृति आते ही उसकी आँखे डबड़बा आई। बड़ी श्रद्धा के साथ पश्चाताप करता हुआ वह कबीरजी की ओर देखने लगा।

कबीरजी ने कहा—"मैं पहले ही कहता था कि जो कुछ हम शिष्यों का खाते हैं, उस का बदला भी चुकाना चाहिये। आप उस समय माने नहीं थे, इसलिये अब मार खा–खा कर चुकाना पड़ रहा है। चलो, जो हो गया सो हो गया। अब थोड़ा कर्जा और बचा है अब तो सुस्त मत बनो। जल्दी जल्दी चुस्ती से काम कर के यह भी उतार दो और इस दुःखपूर्ण योनि से छुटकारा पाओ।"

कबीरजी के आशीर्वचन सुनकर बैल अपनी सुस्ती छोड़ कर एमदम काम में लग गया। हाँकने वाला बेचारा कुछ भी समझ नहीं सका कि कबीरजी ने यहाँ खड़े खड़े ऐसा क्या जादू किया कि ऐसा मरा–मरा अडियल और सुस्त बैल एकदम फुर्तीला बन

गया ! हाँकने वाला तो क्या अच्छे अच्छे अपने को समझदार मानने वाले तीसमार खाँ भी योगी और संतों की चालें नहीं समझ सकते। यह तो थोड़ा बहुत वे ही समझ सकते हैं जो थोडा बहुत उनके सान्निध्य में रहे हैं अथवा जिन पर उनकी स्वयमेव कृपा होती हैं।

समझपूर्वक कोई जीए तो वह भी साधु है, मगर बे-समझ से जीता है तो वह साधु भी गृहस्थी ही है। समझपूर्ण (विवेकपूर्ण) व्यवहार भक्ति बन जाता है और बे–समझ की भक्ति भी व्यवहार बन जाती है।

लोग सोचते हैं आत्म–साक्षात्कार करना तो साधुओं का काम है। हम तो गृहस्थी हैं। अरे भाई, साधुओं का ही नहीं हैं और साधुओं का तो यह काम हो चुका है। उन्हें इतनी जरूरत नहीं है जितनी गृहस्थो को है। फिर लोग कहते हैं, अभी हमारी उम्र नहीं हुई भगवान का भजन करने की। अभी तो मौज शौक के दिन हैं। बुढापे में देखेंगे। जैसे भगवान पर एहसान करेंगे भक्ति कर के। अरे, करते हो तो अपने लिये करते हो। अपना जीवन सुधरे–इसलिये करते हो ! कोई भगवान के लिये करते हो क्या ? भगवान की भक्ति को लोगों ने फालतू समय का उपयोग समझ लिया है।

और जब दुःख पडता है तब तो ईश्वर चिन्तन करते ही हैं, फिर पहले से ही क्यों न करें !

दुःख में सुमिरन सब करे सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे को होय॥

इस उलटी समझ के कारण ही तो लोग दुखी होते हैं! योग
वासिष्ठ में वसिष्ठजी कहते हैं–

"हे रामजी! दुःख देखना हो तो संसार में जाओ। संसा
में लोग बिचारे बड़े दुखी हैं। बिना अग्नि के जलते हैं। बिन
ताप के तपते हैं। बिना पानी के डूबते हैं।"

सिंध में एक बड़ा प्रसिद्ध फकीर हुआ है 'बताया'। बताय
की माँ ने एक बार कहा–"बेटा बताया! जा अग्नि ले आ
भोजन पका लूँ।" बताया ने कहा–"मां अग्नि नहीं है, कह
से लाऊँ।"

मां बोली–"बेटा, तू तो बड़ा पहुँचा हुआ है। जा नरक
से ही ले आ। कहते हैं, वहाँ भयंकर अग्नि से पापी जलते हैं।"

बताया ने कहा,–नहीं मां, नरक में अग्नि नहीं है। ये त
लोग मुए राग–द्वेष की अग्नि यहीं से साथ ले जाते हैं।"

लोग अपनी बेसमझी समझाने पर भी नहीं छोड़ते। राग–
द्वेष, मेरा–तेरा, लोभ–मोह, क्रोध कपट सब अपने साथ रखते है
मरते दम तक और भगवान की भक्ति को अपने जीवन में स्थान
देना नहीं चाहते।

राजा जनक की बात बात बताता हूँ। जनक एक ही नह

हुए हैं। २२ जनक हुए हैं। उनमें से एक की यह कथा है। एक बार महराज जनक स्वर्ग की सैर करना चाहते थे। भगवान के दूतों ने कहा कि आप स्वर्ग तो चलें, मगर आप के द्वारा कोई पापकर्म भी हुआ है, अतः वाया नरक होकर जाना पड़ेगा। इस प्रकार भगवान के दूत जब जनक को स्वर्ग ले जा रहे थे तो बीच रास्ते में पहुँचने पर दूतों ने उनको सचेत करते हुए कहा–"महाराज! अब आप को नरक के बीच में से निकलना होगा।

जनक ने कहा–"ठीक है, ले चलो।"

जब नरक के पास से गुजर रहे थे तब जनक के कानों में बहुत से लोगों का करुण क्रंदन सुनाई पड़ा।

जनक ने देवदूतों से कहा–"यह क्या है? ये आवाजें काहे की हैं?

दूत बोले, "महाराज! नरक में पापी अपने पापों का फल भोगते हुए नरक की आग में जल रहे हैं। उसी का करुण क्रन्दन सुनाई दे रहा है।"

इतने में जनक ने सुना–"महाराज! आप थोड़ी देर और रुक जाईये। आपको छूकर आनेवाली हवा से और आप की उपस्थिति से हम को बड़ी शांति मिलती हैं।"

जो पुण्यात्माएं होती हैं, जो संत–हृदय होते हैं, उन की उपस्थिति मात्र से आसपास के लोगों को आत्मिक सुख का

आभास होता है। इसीलिये कहते हैं संतों का संग करो। कुसंग से बचो। कुसंग से हृदय अशांत होता है। सत्संग से हृदय शांत होता है, ठरता है। कैसा भी अस्थिर चित्त व्यक्ति हो, वह यदि जिज्ञासा से किसी सच्चे संत के नजदीक जाएगा तो उस को शांति का आभास होगा। कितनी मात्रा में होगा यह तो वह कितनी देर उनके संग में रहता है इस पर एवं कितनी उस की श्रद्धा उन संत के प्रति है इस बात पर निर्भर है।

तो जनक के उधर से गुजरने मात्र से पापी लोगों को बड़ी शांति मिलने लगी। उनकी करुण पुकार से जनक वहीं ठहर गए। जनक ने दूतों से कहा, "मैं अकेला ही सुखी होऊं उसकी बजाय तो इनको सुखी होते देखकर अधिक आनन्द आ रहा है। मैं तो इधर हो रुक जाता हूँ।"

मगर दूत बोले—"नहीं महाराज! आपने पुण्य किये हुए हैं, इस लिये आप नरक में नहीं रुक सकते—यह नियम है। आप पुण्यात्मा हैं, अहिं आपको स्वर्ग चलना ही पड़ेगा।"

जनक ने कहा—"तो मैं अपने पुण्यों का इनको दान कर देता हूँ।"

मगर जनक के पुण्यों का दान करते ही पुण्यों के दान का एक महापुण्य फल और उसके पुण्यों में बढ़ गया।

दान में बड़ी ताकत है। दान मनुष्य को मनुष्यत्व से देवत्व

की ओर ले जाता है। विवेकानन्द कहते थे, यह धर्म सीख लो—'त्याग त्याग त्याग।' त्याग मनुष्य को ऊँचा उठा देता है। हम सोचते हैं, त्याग से हमारा कुछ घट जाता है। यह इसलिये कि प्रकृति के सूक्ष्म नियमों को हम नहीं जानते।

यह प्रकृति का नियम है कि जो जितना त्याग करता है उतना, बल्कि उससे भी अधिक ब्याज सहित पाता है। जो खोता है वही पाता है। मगर जो सम्हाल के रख लेता है वह न स्वयं के काम में ला पाता है न उससे दूसरों का हित ही कर पाता है।

कहते हैं, एक बार नदी और तालाब में झगड़ा हुआ। तालाब ने अपनी समझ से नदी को यह सलाह दी कि तू बड़ी भोली और मूर्ख है कि सारा पानी समुद्र को दे देती है। वह तो तुझे इसके बदले कुछ भी नहीं देता। कभी किसी के सामने तेरा गुण भी नहीं गाता। अब तो अपनी नादानी छोड़ और मेरी तरह संग्रह करना सीख! मगर नदी ने उसकी एक भी न मानी और अपने पास आया उसे देने में ही लगी रही। वह धैर्यवान थी। त्याग ही उसका प्रमुख गुण था। उसका आचरण वेदान्ती था। इसलिये वह सूखी नहीं, जितना देती रही उतना पाती रही। सदैव निर्मल—पवित्र—उत्साही बनी रही। मगर दूसरी तरफ वह तालाब जो संग्रही थी, वह सूखता चला गया। उसका पानी पड़ा

पड़ा सड़ता रहा और बदबू मारता रहा। गांव के लोग उसमें कचरा डालने लग गए।

"न प्रजया धनेन न चेज्यया
त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः।"

अर्थातः मुक्ति न संतानों से होती है, न धन से, न यज्ञ से; वह अमृतत्व केवल त्याग से मिलता है।

कबीरजी कहते हैं—

राम नाम के कारणे, सब धन दीनो खोय।
मूरख जाने घटि गयो, दिन दिन दूनो होय॥

त्यागोहि महत्पूज्यो सद्योमोक्षप्रदायकः।

त्याग महापूजनीय है, जल्दी से जल्दी मोक्ष दिला देता है।

तो त्याग बडा धर्म है। ज्योंही जनक ने अपने पुण्यों का त्याग किया तो दूत बोले—

"अब तो महाराज आप और जल्दी स्वर्ग में चलें, क्योंकि आपके त्याग से एक त्याग करने का बहुत बड़ा पुण्य और आपके पुण्यों में बढ गया है।"

राजा जनक ने कहा—

"मैं अपने त्याग के पुण्य का भी त्याग करता हूँ।"

इतने में तो साक्षात् भगवान विष्णु वैकुण्ठ से विमान लेकर आये और बोले—

"आपने सब पुण्य त्याग किया और त्याग के महापुण्य का भी त्याग किया, इसलिये मैं स्वयं ही यहाँ आ गया हूँ।"

इस कथा से सिद्ध होता है कि जो अपने सर्वस्व का—पुण्य आदि के फल का भी त्याग करता है वह आत्म—शांति का स्वाद पाता है और प्रभु उसके पास ही होते हैं। ऐसे पुरुषकी उपस्थिति मात्र से जैसे नरक की यातनाओं में जलते हुए आदमियों को शांति मिली थी, वैसे ही मृत्युलोक में संसारकी यातनाओं से परेशान व्यक्तियों को ऐसे सत्पुरुषों के सत्संग और सांनिध्य से शांति मिलती है।

जिसको अपने बल बुद्धि तेज तन्दुरस्ती का दिवाला जल्दी निकालना हो वह सटोरियों, शराब खोरों और सिनेमा देखने वालों का संग करे।

जिसको केवल ज्यादा धन कमाना है वह सेठियों का संग करें। जिसको शांति और धन दोनों कमाना है वह भक्तों का संग करें और जिसको आत्म धन ही कमाना है, ऐसा धन जिस से बड़ा कोई धन नहीं यानी आत्म साक्षात्कार करना है, वह कामिल संत की शरण ले।

जिस वस्तु की इच्छा है उस के पहले अधिकारी बनें। एँठा जूठा कागज कचरा भी अपने में कुछ योग्यता रखता है तो उसे भी लोग काम में लगा देते हैं। वह भी रास्ते से उठा लिया जाता है। तो पहले यह विवेक बुद्धि से विचार करें कि हमें क्या चाहिये?

नश्वर चाहिये कि शाश्वत् ? माया चाहिये कि मायापति ! काम चाहिये कि राम ! यदि राम चाहिये, यदि ईश्वर चाहिये तो पहले अपने को ईश्वर का प्रेम प्राप्त करने के योग्य बनाएं। जप-तप-व्रत-संयम-सत्संग आदि कर के अपने हृदय को शुद्ध बनाये तो ईश्वर अपने आप हमारे शुद्ध हृदय में प्रकट हो जाएंगे।

जो सुख की इच्छा करता है और दुःख से डरता है, उसके भाग्य में दुःख ही आता है और जो सुख की इच्छा नहीं करता व दुःख से डरता नहीं उसे ईश्वर का आनन्द मिलता है।

संसार में सारी इच्छाएं तो कभी किसी की भी पूरी नहीं हुई। प्राईम मिनिष्टर की भी पूरी नहीं होती। मनुष्य तो क्या देवराज इन्द्र की भी पूरी नहीं होती। हम कितनी ही प्रतिष्ठा हासिल कर लें, कोई न कोई निन्दा करनेवाला बना ही रहता है। हमें लोग अच्छा ही कहते रहें, हमारी लोग प्रशंसा ही करते रहें- यह सोचना ही मूर्खता है। सदैव अनुकूलता नहीं रहती। प्रतिकूलता भी आएगी ही। अनुकूलता में राग न रहे और प्रतिकूलता में द्वेष न रहे। दोनों स्थितियों में सम रहने की चेष्टा करें।

जिसने दोनों स्थितियों में सम रहने की कला सीख ली उसे ईश्वर की झलक मिल जाती है। उसी ने समझो जगत में बड़ा काम किया है।

उसने जहाँ में बड़ी बात कर ली,
जिसने अपने आप से मुलाकात कर ली।

संसार में धन कमा लेना बड़ी बात नहीं है, यश कमा लेना बड़ी बात नहीं है, सत्ता या पद कमा लेना बड़ी बात नहीं है, छोकरा-छैया, कार-बंगला आदि ठाट-बाट बना लेना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है अपने को जान लेना। 'हम कौन है-इस को जान लेना।

मैं कौन हूँ-यही जानना सबसे बड़ी बात है।

मैं गरीब हूँ-मैं अमीर था...,नहींSSS गरीबी एक अवस्था थी। अमीरी एक दूसरी अवस्था है। दोनों को मैंने देखा है। मैं बच्चा था, मैं जवान था, मैं बूढा बना....। नहीं SSS, बचपन, जवानी, बुढापा ये तीनों अवस्थाएं हैं जो आई, जिनको मैंने देखा। अवस्थाएं आती हैं, बदलती हैं। मैं कभी नहीं बदलता। मैं तो इन सब अवस्थाओं का द्रष्टा साक्षी चेतन आत्मा हूँ। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, गरीबी-अमीरी, जवानी-बुढ़ापा ये सब आते हैं जाते हैं। मन बुद्धि शरीर के ये सब धर्म हैं, उनकी अवस्थाएं हैं। इन से मैं क्यों विचलित होऊँ ?

ये आने जाने वाली सब अवस्थाएं सपना है। सपने की तरह बीत जाने वाली हैं। मैं यह सब सपने की तरह देख रहा हूँ। यह अटकल है ब्रह्मज्ञान की जिसको संत ही जानते हैं। यही रास्ता है सब दुःखों से छूटने का। यह अटकल नहीं सीखी तो हजार मालाएं घुमाओ, हजार जप-तप करो, हजार प्रकार की पूजाएं करो-थोड़ी सी प्रतिकूल परिस्थिति भी

हमारे चित्त को विचलित कर देगी। यदि चित्त स्थिर नहीं होता तो समझो हमारी साधना आगे नहीं बढ़ी।

चित्त को स्थिर करने में योग, ध्यान और सत्संग मदद करते हैं। कई लोग वर्षों घर छोड़कर इधर उधर भटकते हैं, मगर ज्योंहीं कोई प्रतिकूल परिस्थिति आती है तो वर्षों पुराना राग-द्वेष –क्रोध आदि भड़क उठता है, क्योंकि उन्होंने साधना तो की मगर वे किन्हीं कामिल संत महापुरूष का संग नही कर पाए होंगे।

ब्रह्मज्ञान की अटकल ब्रह्मज्ञानी संत ही बता सकते हैं। संत तो बहुत मिल जाते हैं मगर ऐसे संत किसी किसी पुण्यवान भाग्यशाली को ही मिलते हैं।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥

पर्वत बहुत हैं, परन्तु हर पर्वत पर माणिक्य की खानें नहीं होती, हर हाथी के पास मोती नहीं होते और हर वन में चन्दन के पेड़ नहीं होते, वैसे ही साधु पुरुष तो बहुत होते हैं, परंतु आत्म-साक्षात्कार किया हुआ तो उनमें कोई बिरला ही होता है।

ऐसे कोई ब्रह्मनिष्ठ संत मिल जाय जो अपने को अपने भीतर देखने की कला सिखा दे, जो हमें अपना आपा दिखा दें - बस! फिर हमें दुनिया में कुछ भी कष्ट आवें, कैसी भी परिस्थिति

बनें हमें विचलित नहीं कर सकेगी। फिर संसार में कोई ऐसा कष्ट नहीं है, ऐसा दुःख नहीं है जो हमें हिला सकें। फिर कोई बन्धन शेष हो नहीं रहता। फिर संसार में कोई प्रतिकूलता, कोई अशुभ नजर ही नहीं आता। फिर संसार के सारे सुख फीके लगते हैं, क्योंकि आत्मानन्द प्राप्त हो जाता है।

इसलिये ऐसे संत की खोज करें। उनके चरणों में बैठें। उनके मार्गदर्शन में चलें और आत्मसाक्षात्कार करके अपने जीवन को सफल बनायें–यही परम पुरूषार्थ है।

ॐ ॐ ॐ

लक्ष्य–सिद्धि की ओर

(ध्यान योग साधना शिविर, १९ मार्च १९७७, आश्रम)

सायंकाल के ६ बजे हैं। आज प्रातः से ३ दिन का साधना शिविर प्रारंभ हो चुका है। भारत के विभिन्न भागों से आए हुए लगभग २५० साधक शिविर में लाभ ले रहे हैं। शहर से दूर एकान्त स्थान पर नदी किनारे स्थित आश्रम की पवित्र एवं आध्यात्मिक–योग के अनुकूल भूमि पर इस समय सर्वत्र शांति छाई हुई है। हवा भी अपनी चंचलता छोड़कर शांत है। कहीं कहीं पेडों पर से किसी किसी पक्षी की मधुर आवाज शांत वातावरण को और भी सुशोभित कर रही हैं।

आश्रम के प्राङ्गण में स्वामीजी के सम्मुख सभी साधक शांत भाव से बैठे हुए स्वामीजी के वचनामृत का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी–

वेदान्त को समझना हरएक के बस की बात नहीं है। यदि साधक की योग्यता नहीं है, तो वह वेदान्त के सत्संग में अधिक

देर तक नहीं बैठ सकेगा, उकता जायेगा और दूसरी बार सुनने से तोबा कर जायेगा। मगर जिसकी योग्यता है और उसे अनुभूति सम्पन्न समर्थ महापुरुष भी मिल जाय, तो समझो उसके भाग्य का सितारा चमकने वाला है। उसके संचित पुण्य फल देने को आतुर हो रहे हैं, उसे अब अधिक भटकना नहीं पड़ेगा; क्योंकि यह थल या जल का नहीं, आकाश का मार्ग है और ध्येयसिद्धि तक शीघ्रता से पहुँचाने वाला है।

यदि अपने आपको जानना है तो एकान्त देश और सुप्रीम सान्निध्य की अत्यन्त आवश्यकता है। साथ ही साधक को यह दृढ निश्चय होना चाहिये कि जगत विनाशी है और ब्रह्म अविनाशी। यदि इसमें थोड़ी सी भी शंका रही तो साधक कुछ भी नहीं कर सकेगा। 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' इस वेदान्ती वाक्य में उसका मन निःशंक नहीं हुआ तो वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकेगा। और यदि वेदान्त के अनुसार इसमें दृढ़ता से स्थित हो गया तो उसे किसी भी देवी–देवता के आगे दीन बनने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि हजारों देवी–देवता उसके आगे–पीछे सेवा में हाजिर रहने को स्पर्धा करेंगे।

हम उस तत्त्व के अधिकारी हैं। मगर इसके लिये साधक में कुछ गुण होने चाहिये। महापुरुषों ने इसके लिये कुछ प्रमुख गुण जिज्ञासु साधक के लिये आवश्यक बताए हैं–

१ विवेक, २ वैराग्य, षट्र सम्पत्ति और ४ मोक्ष की इच्छा।

विवेक—साधक को नश्वर क्या है और अविनाशी क्या है—इसका विवेक होना चाहिये। विवेक तो साधक का भूषण है। उसे पग पग पर विवेक करना होगा कि मैं कहीं नश्वर से तो मोहित नहीं हो रहा हूँ? शाश्वत् पद ही मेरा लक्ष्य है। वही सत्य है। वही मेरा स्वरूप है, बाकी सब माया है, धोखा है, नश्वर में मेरी सत्यबुद्धि नहीं होनी चाहिये। मेरे मार्ग के लिये भला क्या है—बुरा क्या है, मेरे मार्ग में साधक क्या है और बाधक क्या है, मेरे लिये ग्रहणीय क्या है और अग्रहणीय क्या है-इसका विवेक साधक में होना ही चाहिये। फिर आता है वैराग्य।

वैराग्य—कोई घर छोड़कर भाग गया तो लोग समझते हैं उसे वैराग्य हो गया। घर त्याग करना एक बात है और वैराग्य होना अलग ही बात है। किसी वस्तु का त्याग कर लेना यह ठीक है, मगर यही वैराग्य है—ऐसा नहीं है। किसी कारण हमने वस्तु का त्याग तो कर लिया, मगर मन में उसका चिन्तन बना रहा यह भी वैराग्य नहीं हुआ, क्योंकि पहले वस्तु का रागात्मक चिन्तन था तो अब द्वेषात्मक चिंतन है। वस्तु का चिंतन हटा नहीं। इसलिये केवल त्याग को ही वैराग्य मत समझ लेना। कई साधक ऐसे ही घर छोड़कर भाग जाते हैं। सच्चा वैराग्य उनको होता नहीं, फिर किन्हीं पाखंडी—पुरुषों के चक्कर में फंस जाते हैं और उम्र भर पछताते रहते हैं। न इधर के रहते हैं न उधर के, न घर के न घाट के। फिर भी यदि इस गृह—त्याग के साथ ही कोई तत्त्व-

निष्ठ महापुरुष मिल जाय तो वे उसके त्याग को सार्थक बना देंगे, उसमें सही वैराग्य जगा देंगे और उसका जीवन धन्य बना देंगे। मगर ऐसे महापुरुषों का मिलना बहुत दुर्लभ है—बहुत दुर्लभ। गीताकार श्री कृष्ण भी जिस को दुर्लभ कहते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

वासुदेव के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं अर्थात् तत्त्व से जो मनुष्य मुझे जानता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है। फिर भी जो साधक लगे रहते हैं अपनी साधना में पूर्ण श्रद्धा व अभ्यास-पूर्वक उन्हें एक दिन शुद्ध वैराग्य उपलब्ध हो जाता है।

षट्—सम्पत्ति—षट्—सम्पत्ति में प्रथम है—शम।

१ **शम**—शम, अर्थात् शमन करना। मन सदैव डग—मग होता रहता है। बात तो समझ में आ गई, लेकिन वह बार बार खिसक जाता है। उसे समझी हुई बात पर दृढ करना और उसकी फिसलने की गति पर प्रतिबंध लगाना ही शम है।

२ **दम**—लगाओ दम, छूटेगा गम—यह कहना शायद संतों ने ही शुरु किया होगा। मन बार—बार हमारे कब्जे से भाग जाता है। इन्द्रियां बार—बार हमें उनके इच्छित विषयों की ओर खींच ले जाती है। तो मन और इन्द्रियों को समझा कर दृढतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर लगाना ही दम है।

३ **श्रद्धा**—**'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं'।**

श्रद्धावान् को ही ज्ञान होता है। गुरु में-वेद वचनों में पूर्ण श्रद्धा आवश्यक है। यह मार्ग ही ऐसा है कि इसमें जहाँ मन में संदेह उठा गुरु के प्रति कि वहीं साधक की प्रगति रुक जाती है। यदि वह शीघ्र ही नहीं सम्हला, तो वहीं पहुँच जायेगा, जहाँ से चला था।

'संशयात्मा विनश्यति।'

इसलिये पूर्णश्रद्धा-अटूट श्रद्धा गुरु के प्रति-शास्त्रों के प्रति अपने मार्ग के प्रति साधक में होना अत्यंत आवश्यक है।

४ **समाधान**-समाधान को भी समझ लेना चाहिये। हम अपने अन्दर पूरी तरह से अपने लक्ष्य को समझे हुए रहने चाहिये। ऐसा न हो कि कोई हमें कुछ प्रलोभन दें तो उसकी बातों में आ जायें और दूसरा मिले और कुछ चमत्कार आदि बता दें तो उसके पीछे चल पड़े। हमें अपने लक्ष्य और साधन का विचार-पूर्वक, तर्कयुक्त बुद्धि से यह निर्णय ले लेना चाहिये कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह ठीक है। हम कहीं के नहीं रहेंगे यदि किसी के प्रभाव में आकर कभी किधर ढुल गए और कभी किधर ढुल गए तो! कुछ भी आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

मुझे अभी भी मेरे गुरुदेव की वह डाँट याद आती है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बोरीवली (बम्बई) के पास एक आश्रम में हमारे नीचे वाले कमरे में एक संन्यासी, सुन्दर सफेद उनकी दाढ़ी थी, रहते थे। एक बार उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'तुम

जवान हो, शक्तिशाली हो, त्याग-तपस्या भी तुम्हारी कम नहीं है। तुमने घर छोड़ा है-इतना कुछ किया, फिर भी मुझे लगता है तुम्हारी समय व शक्तियाँ व्यर्थ जा रही हैं। तुम्हारे जैसे को ठीक मार्ग-दर्शन मिल जाय तो देश को हिला सकते हो, देश की काया-पलट कर सकते हो इतनी शक्तियाँ तुम्हारे में हैं। इन सफेद कपड़े वाले (मेरे गुरुदेव-स्वामी लीलशाहजी) साधु के पास क्यों तुम अपना समय बरबाद कर रहे हो?"

मैंने कहा-मुझे उन्हीं से तृप्ति मिलती है।

संन्यासी बोले-मैं तुम्हें मंत्र देता हूँ। उससे कई देव-दर्शन होंगे, ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ आयेगी, तुम्हारा जीवन चमक जायेगा। ....और चलो मेरी तरफ भले मत आओ और किसी के पास जाओ, पर यहाँ तो अपना अमूल्य जीवन और प्रतिभा नष्ट मत करो। मुझे तुम्हारे हित की बड़ी चिंता होती है, इसीलिये कहता हूँ भाई....अन्यथा हमें क्या? जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। यानी उसने तो मेरी गुरु के प्रति निष्ठा डिगाने की कोई कोर-कसर बाकी नही रखी थी।

जब मैं लौटा तो क्या हुआ....? सुनने की बात तो अब है आपके लिये। मुझे गुरुदेव ने लौटा तो पास में बुलाकर धीरे से पूछा, "क्या कर रहे थे उसके पास?"

मैं बड़ी विनम्रता से बोला, "ऐसे ही कुछ देर के लिये उसके पास ....।"

"पर गया क्यों वहाँ....?"

(यह वाक्य स्वामीजी इतनी जोर से बोल पड़े हैं कि उनके सम्मुख बैठे कुछ साधक तो चमक उठे हैं। माईक भी थरथरा उठा उनकी तेज आवाज से। फिर स्वर संयत कर बोले–)

यह तो मैंने उनकी नकल करके बताने का प्रयास किया है। वस्तुतः वे तो कभी कभी इससे भी अधिक जोर से डाँटते थे। मैं तो उस समय चमत्कृत हो गया यह सोचकर कि यह इतनी बड़ी गलती तो थी नही मेरी कि....। खैर, थोड़ी देर बाद गुरुदेव मुझे धीरे धीरे समझाने लगे–

"देख भाई, साधक होता है बाज पक्षी और द्वैतवादी होते हैं शिकारी। यदि सचेत नहीं रहे साधक, तो शिकारी के चंगुल में फंस जाता है। द्वैतवादी ईश्वर से दूर ले जाते हैं। ईश्वर तो हमारा अपना आपा है। वे उल्टे सीधे तर्क करके हमें यह सच्चा कि वह सच्चा के भ्रम में डाल देते हैं, फिर हम न इधर के रहते हैं न उधर के। साधक ऐसों के कहने में आकर अधोगति की ओर चला जाता है। मत भूल करना ऐसी कमी....समझा कि नहीं....?"

मैंने सिर झुकाकर अपनी भूल स्वीकार की और चुपचाप दूसरे अपने काम में लग गया। यदि उस डाँट को मैं गलत समझा होता और गुरु के वचनों में अश्रद्धा की होती तो आज

आप सबके सामने इस आसन पर बैठा नही मिलता, और कहीं होता।

यह सब बताने का मतलब क्या है कि साधक अपनी अद्वैत निष्ठा नहीं छोड़े। सब प्रकार के प्रश्न–शंकाएँ उठाकर उनका समाधान अपने अन्दर पहले ही कर लें।

५ उपरति–अब आता है उपरति। उपरति का अर्थ है कि विवेक करके जब संसार का लगाव छोड़ दिया आसक्ति छोड़ दी, अपने साधना मार्ग में आने वाले मोह आदि विघ्नों को छोड़ दिया– तो फिर उधर नहीं देखना। जिसको थूक दिया उसे पुनः चाटना नहीं। चल पड़े ब...स! उपशम हो गए....। अब नही रुकेंगे– चलते ही रहेंगे। कोई भी नाते–रिश्ते, कोई भी मोहक परिस्थिति अब हमारा रास्ता नहीं रोक सकती–ऐसी उपरामता हो।

६ तितिक्षा–दम लगाएंगे तो तितक्षा सहनी पड़ेगी। साधारण विद्या प्राप्त करने के लिये भी विद्यार्थी कितनी कठिनाईयाँ सहन करता है! वह गांव छोड़ता है, शहर में आता है। शहर की होस्टल में रहता है। जैसा मिले वैसा खाता है। घर की सुविधाएं, मां का प्रेम, घर का घी–दूध तो वहाँ मिलता नहीं। होस्टल के नियम, अधिकारियों की फटकारें, फिर रात रात भर जागकर परीक्षा की तैयारी आदि–सबमें कितनी तितिक्षा वह सहन करता है! तो यह तो ब्रह्मविद्या है।

यह तो आपके पुण्य हैं जो यह ब्रह्मविद्या आज हमें इतनी

सहूलियतों में मिल रही है। शहर के निकट आश्रम, आने जाने की सुविधा, रहने की सुविधा, भोजन की सुविधा आदि । यानी ऐसी कोई असुविधा नहीं कि एकदम भाग जाने की नौबत आ जाए। अन्यथा पहले कितनी तितिक्षा सहन करते थे शिष्य...!

राजा भर्तृहरि ने राजमहल छोडा था इस के लिये। वे शिला पर सोते थे, भिक्षाटन करते थे। रुखा सूखा मिला तो ठीक, नही मिला तो ठीक। कितने शारीरिक व मानसिक कष्ट, लोगों के कटु शब्द, मान–अपमान शिष्यों को सहन करने पड़ते थे, और वर्षों ऐसे ही घर का–रिश्तेदारों का मोह त्यागकर जब तक साक्षात्कार नहीं हो जाय तब तक आश्रम में गुरुके सान्निध्य व सेवा में रहते थे ! उनकी तुलना में आज हमारी तितिक्षा तो कुछ भी नहीं है । यह तितिक्षा का गुण साधक की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जितना यह गुण साधक अपने में लायेगा, उतना ही वह शीघ्रता से आगे बढ़ेगा।

मोक्ष की इच्छा–अंतिम तत्व है मोक्ष की इच्छा। यदि यह नहीं हो तो सब बेकार। एक बार नरेन्द्रने रामकृष्ण परमहंस से पूछा, "गुरुदेव, मुझे साक्षात्कार कब होगा?" इस पर रामकृष्ण देव बोले–

"चलो, नदी में स्नान करने चलते हैं।"

दोनों नदी पर पहुँचे। ज्योंही नरेन्द्र ने पानी में डुबकी लगाई परमहंस ने अपने हाथ से उसका गला पानी में दबाए रखा,

पानी से बाहर नही आने दिया। जब देखा कि अब श्वास बुरी तरह घुटने लगा तब अपना हाथ हटाया। जब नरेन्द्र ने अपना सिर बाहर निकाला और श्वास ले ही रहा था कि परमहंसने उसे पकड़कर फिर पानी में दबा दिया। इस प्रकार तीन बार गला पानी में दबाने के बाद जब परमहंस ने अपना हाथ हटाया तो नरेन्द्र ने पानी से बाहर अपना सिर निकाला और लम्बे लम्बे श्वास लेता हुआ बोला:

"गुरुदे....व ! यह क्या कर रहे थे आ....प ! ऐसे तो मैं...। "रामकृष्ण बोले: अच्छा यह बताओ कि जब तुम्हारा सिर पानी में दबा हुआ था, उस समय कोई स्वादिष्ट पदार्थ खाने की इच्छा हो रही थी मन में?

नरेन्द्र–नहीं।

परमहंस–कोई ऋद्धि–सिद्धि या धन–वैभव पाने की इच्छा थी?

नरेन्द्र–नही।

परमहंस–कोई बड़ा आदमी बनकर मान प्रतिष्ठा पाऊँ.... ऐसा कुछ आ रहा था मन में?

नरेन्द्र–नहीं।

परमहंस–कोई गुरु बनकर चेले बढाऊँ या कोई बड़ी सत्ता प्राप्त करूँ....?

नरेन्द्र–नहीं।

परमहंस–तो क्या इच्छा थी...बता?

नरेन्द्र—ये सब कुछ नहीं, बस एक ही इच्छा थी कि किसी प्रकार अगल–बगल, दाएं–बाएं, आगे–पीछे कहीं से भी बाहर निकलूँ और श्वास लूँ ।....बस, यही एक इच्छा थी ।

तो इस प्रकार हम सब समझ लें कि हम संसार समुद्र में डूबे हुए हैं । यहाँ माया ने हमको अपने मोह में डुबाया हुआ है । यदि ऐसी तीव्र इच्छा संसार से पार होने की, नरेन्द्र की भांति हममें पैदा हो जाय तो साक्षात्कार दूर नहीं है । विवेकानन्द बनना फिर दूर नहीं है । ऐसी दृढ़ इच्छा जिसने पैदा कर ली, उसे वर्षों या महीनों का भी इन्तजार नहीं करना पड़ता । उस पर तो गुरु की कृपा अनायास ही ढुल पड़ती है ।

वेदान्त का उत्तम अधिकारी हो मगर गुरु समर्थ नहीं हो तो भी काम नही बनता, यदि गुरु केवल पण्डित है, शास्त्रीय जानकारी रखता है, ब्रह्मनिष्ठ नहीं है तो भी और केवल ब्रह्मनिष्ठ है श्रोत्रिय नहीं–शिष्य का समाधान नहीं कर पाता तो भी काम नहीं बनता । गुरु यदि श्रोत्रिय हो और ब्रह्मनिष्ठ हो तो उत्तम है और साथ ही योगी भी हो तो अत्युत्तम । फिर तो सोने में सुहागा है । वे शिष्य बहुत–बहुत भाग्यशाली हैं जिनको ऐसे गुरु मिलते हैं । ऐसे गुरु कैसा भी शिष्य हो उसे उस के अनुकूल साधना करायेंगे और शिष्य का साधना मार्ग और भी छोटा कर देंगे । ऐसे गुरु शिष्य की प्रकृति के अनुकूल उसे निष्काम कर्म कुण्डलिनीयोग, नादानुसंधान योग, ध्यानयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, ब्रह्म ध्यान,

ब्रह्म विचार–जो भी उस के योग्य होगा उससे कराएंगे, ताकि शीघ्र वह अपने लक्ष्य पर पहुँच सके ।

वेदान्त बहुत गूढ़ विषय है । इसे समझना–समझाना हरेक का कार्य नहीं है । यदि अनधिकारी को यह समझाया जाय–उसकी हृदय शुद्धि साथ साथ न हो तो समझो उसका उत्थान की बजाय पतन शुरू हो गया । आपके बीचमें एक साधक बैठा है उसे यदि ठीक से और समय पर अधिकारी बने बिना वेदान्त समझाता तो एक तरह से उसकी हत्या हो जाती । यह तीसरी शादी करने वाला था । यदि यह शुष्क वेदान्त भी समझता तो कहता-क्या है–सभी ब्रह्म ही है । दुकानदार ब्रह्म तो ग्राहक भी ब्रह्म, लड़का ब्रह्म तो ब्रह्म लड़की भी ब्रह्म, पति ब्रह्म तो पत्नी भी ब्रह्म–ब्रह्म ब्रह्म से खेलता है । चलो, कर लो शादी...। ये शादी करलेता और दुकान पर बैठा रहता । फिर कभी इस जीवन में तो ऊपर नहीं उठ पाता । आज जो लोग इसको माला पहनाते हैं और चरण छूते हैं, वे किसी और के ही चरण छूते....।

तो बड़ा मुश्किल है योग्य शिष्य और योग्य गुरु का मेल ! हमारे पुण्य से यदि कोई राहनुमा (कामिल गुरु) मिल जाय जिसने सारे रास्ते देखे हुए हैं, उसके प्रति हमारा थोड़ा सा भाव बन जाय, वे प्रसन्न हो जाय और हमारा हाथ पकड़ ले तो ठीक–फिर वे हमें ऊपर उठा लेते हैं, नहीं तो इस संसार में अहा ! ठोकरें ही ठोकरें–जो पहले से खाते आए हैं खाते रहो । उनका कहीं अन्त नहीं....।

सुन्दर से सुन्दर, आकर्षक तर्कयुक्त शैली में वेदान्त सुनाने वाले बहुत मिल जाते हैं मगर अनुभवी नहीं मिलते। बगीचे में आम के पेड़ गिनने वाले, उन पेडों की उम्र, स्थिति, विशालता, हरियाली आदि का वर्णन वैज्ञानिक ढंग से करने वाले बहुत मिल जाते हैं, परन्तु पेड़ से तोडकर कोई आम ही खिला दें -ऐसे-विरले ही मिलते हैं। यानि ऐसे तत्त्वज्ञ महापुरुषों का मिलना उतना ही कठिन है जितना मरूभूमि में पानी का मिलना।

ऐसे महापुरुष वास्तविक सुख की ओर ले जाते हैं। इच्छाएँ बढाने में सुख नहीं है। इच्छाएँ घटाने में सुख है और जो निर्वासनिक है, वह पूर्ण सुखी है। मगर निर्वासनिक होना यह कोई इतना सरल नहीं है। मोक्ष की इच्छा भी एक इच्छा ही है–फिर भी यह सात्विक इच्छा है, अतः बुरी नहीं है। यह भी धीरे धीरे समाप्त हो जाती है। फिर निर्वाण सुख की उपलब्धि होती है। जैसे लकड़ी को आग लगी। आग लकड़ी को जला देती है फिर स्वयं भी बुझ जाती है, वैसे हो अज्ञान को मिटाने के लिये ज्ञान पाने को–मोक्ष पाने की इच्छा करते हैं फिर यह भी विलीन हो जाती है। फिर जब गुरुकृपा से अज्ञान की भ्रांति टूट जाती है तब ख्याल आता है कि बन्धन था ही नहीं तो मोक्ष किसका होता। मोक्ष स्वरूप तो हम थे ही। अज्ञान था ही नहीं तो ज्ञान किसको होना था? अज्ञान की भ्रांति थी अतः ज्ञान की भ्रांति पैदा करनी पड़ी थी। जब यह अज्ञान–ज्ञान की ग्रंथि खुल

जाती है, तब साधक कह उठता है–

जी में आता है किसी को न देखूँ।
सूरत जो दिखा दी तो ले जाओ नजर भी ॥

यह वेदान्त है। वेदान्त कहता है परमात्मा को कहाँ ढूँढते हो? वह तो तुम्हारा अपना ही आपा है। लोग परमात्मा को एकदेशीय बना देते हैं, उसे सीमित बना देते हैं–अपने से अलग कर देते हैं। कबीर ने कहा है–

कंकड़ पत्थर जोड़कर मस्जिद दिया बनाय,
ता पर चढ़ कर बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदा?

खुदा एकदेशीय नहीं है। 'वहाँ है' ऐसा कहना यहाँ उसके होने को इन्कार करना है। वह सर्वत्र है, सर्व समय है त्रिकालाबाधित है। देशकाल की सीमा में आई हुई वस्तु विनाशी होगी और परमात्मा तो अविनाशी है, अजन्मा है।

'हाजरा–हजूर, जागंदी जोत, आद् सत्, जुगाद सत्,
है भी सत्, नानक होसीभी सत्।'

परमात्मा को अपने से दूर देखना पाप है। हमको छोड़ कर और कोई ईश्वर मिलेगा तो वह भाग जायेगा, नहीं रहेगा। क्योंकि मानो भगवान आये, तो तुम होंगे तभी तो तुम्हें दिखेंगे। भगवान है इसकी सिद्धि के लिये–प्रमाण के लिये तुम्हारी उपस्थिति पहले आवश्यक है। तुम हो गए द्रष्टा और भगवान हो गए दृश्य।

दृश्य द्रष्टा के अधीन होता है। तो द्रष्टा स्वयं प्रमाण है, उसके लिये दृश्य की आवश्यकता ही नहीं है, मगर दृश्य बिना द्रष्टा के कल्पनातीत है।

जैसे 'यह माईक है'–यह कहने के लिये, बोलने के लिये 'मैं' प्रमाण हूँ। अब माईक नहीं हो, तो भी मैं तो हूँ ही। मेरे लिये माईक के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

ऐसे ही 'ईश्वर है' यह हम ही कहते हैं। हम ही मूर्ति में आरोपण करते हैं, तब मूर्ति का भगवान भी सिद्ध होता है। **वस्तुतः भगवान हमारा अपना आपा ही है इसको हम नहीं जानते, इसीलिये उसे अन्यत्र ढूँढने की भ्रांति हममें घर कर गई है। वेदान्त इसी भ्रांति को तोड़ता है।**

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥१६॥
(गीता अध्याय १८)

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–"हे अर्जुन! शरीररूप यंत्र में आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है।"

काशी में एक वृद्ध रहते थे। वे बच्चों के साथ बच्चे, बुजुर्गों के साथ बुजुर्ग, भिखारी के साथ भिखारी और फकीरों के

साथ पूरे फकीर बन जाते थे। बाहर के सारे स्वांग हँसते–खेलते कर लेते थे, मगर वस्तुतः वे ईश्वर की छाती पर खेलने वाले महापुरुष थे। वे तत्त्वज्ञानी थे। किसी के साथ वादविवाद में नहीं पड़ते थे। और मस्त रहते थे।

एक बार एक पण्डित शास्त्रार्थ में कईयों को हराकर वहाँ आया तो लोगों ने कहा कि उन बापू को शास्त्रार्थ में परास्त करो तो जानें। वह बापू के पास जा पहुँचा और उन्हें शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। बापू ने कहा 'बेटा! हम तो कभी इस विवाद में नहीं पड़ते, तुम जाओ।'

पण्डित बोला–'नहीं, आपको शास्त्रार्थ तो करना पड़ेगा। या फिर लिख दें कि आप हार गये।'

पंडित ने जैसे तैसे बापू को 'हाँ' करने के लिये बाध्य कर दिया। शास्त्रार्थ की तारीख तय होगई। पंडित अपनी तैयारी में बड़े बड़े ग्रंथ लेकर जुट गया।

लोगों ने बापू को देखा कि वे तो कुछ तैयारी ही नहीं करते। हमारे बापू कहीं हार न जायें, इसलिये उन्हें तैयारी करने का आग्रह करने लगे। मगर बापूतो अपनी ही मौज में रहते थे।

तत्त्वज्ञानी महापुरुषों को पहचानना ढेढ़ी खीर है। हरएक उनकी चाल नहीं समझ सकता। वे जिस तत्त्व में रमते हैं उसकी कल्पना भी सामान्य जीव की समझ के परे की बात है। वे देशकाल

वस्तु से परे, माया में व्यवहार करते हुए माया से परे होते हैं।

निश्चित दिन बापू चल पड़े शास्त्रार्थ स्थल की ओर। रास्ते में एक मोची जूते सी रहा था।

ज्योंही बापू को उसने प्रणाम किया बापूने कहा, 'चलो आज हमारे साथ चलो।' मोची ने अपनी दुकान की तरफ देखा। वह गरीब था। 'दुकान छोड़कर कैसे जाऊँ' यह विचार करके हिचकिचाया। बापू उसकी हिचकिचाहट समझ गये। उन्होंने ५–१० रुपये देकर उसे खुश कर दिया और उसे भी अपने साथ ले चले।

शास्त्रार्थ स्थल पर तो लोगों की भारी भीड़ जमा थी। पंडित तो काफी देर पूर्व ही आकर बैठ गया था। लोग बापूका इन्तजार कर रहे थे। उनके मन में यह भय घुसता जा रहा था कि आज बापू कहीं हार न जाय। मगर बापू तो बापू ही थे! थोड़ी ही देर में वे भी आ पहुँचे और सबके देखते ही देखते उन्होंने उस आये हुए मोची को जबरन अपने आसन पर बिठा दिया तथा अपने हाथ की माला भी उसके गले में डाल दी। आसन पर बैठते ही मोची को तो जैसे बिजली का करन्ट छू गया हो, वह तुरंत आसन से नीचे उतरते हुए बोला, "यह क्या करते हैं—यह क्या करते हैं महाराज! अह तो आपके बैठने का आसन है। और आप मुझे यहाँ पर....नहीं नहीं महाराज! बापूSSS मुझ गरीब पर यह पाप मत चढाओ...."

... मगर बापू उसे पुनः आसन पर बिठाकर हाथ जोड़कर बोलने लगे—

"....हे प्रभु, सच्चिदानन्द, परब्रह्म परमात्मा! आप महान् हैं। आप सबके कर्ता धर्ता हैं और हम तो तुच्छ जीव हैं। हम आपके चरणों की धूल हैं। हम आपके जन्म–जन्म के दास हैं। हम पर आ....प दया....।"

बापू तो मोची को सम्बोधन करके स्तुति गाये जा रहे थे और मोची बेचारा लज्जित होकर चिल्लाये जा रहा था—

'नहीं नहीं महाराज! यह पाप मुझ पर मत चढाओ। बापू ये लो आपके रूपये भी वापस लेलो, मगर ऐसा मत करो, मैं तो दीन जीव हूँ, धूलाराम का बेटा हूँ....मुझे जाने दो बापूSSS दया करो। मुझ नादान जीव पर दया करो....।'

आगन्तुक सभी लोग बापू का यह विचित्र व्यवहार नहीं समझ पाए और सभा में विस्मय मिश्रित हँसी के फव्वारे छूटने लगे।

इस प्रकार २–३ बार बेचारा मोची आसन से उतरा और बापू ने उसे पुनः पुनः आसन पर बिठाकर उसकी स्तुति की। आखिर मोची आसन से उतर कर एक ओर आकर खड़ा हो गया, तब बापू ने अपना आसन ग्रहण किया और शांत स्वर में पण्डितजी से पूछा, "हाँ, तो पण्डितजी आप अपना सिद्धांत कहें।"

पण्डितजी तो बहुत पढे थे। चारों वेद, उपनिषद, पुराण,

अला विद्या, बला विद्या, भूत विद्या, प्रेत विद्या, वशीकरण विद्या... जो जो भी पढ सकते थे, सब उन्होंने पढ़ रखा था और अभी पढकर पूरी तैयारी करके आये थे। मगर पढना एक बात होती है और उसको जीवन में उतार लेना, उसका मर्म समझ जाना— तत्त्व का अनुभव कर लेना यह और बात होती है। अनुभवी तो हजारों लाखों में कोई विरले ही होते हैं।

तो ऐसे पढ़े हुए पण्डितजी थे वे। वे बोले—

"मेरा सिद्धांत यह है कि हम सब जीव हैं। हम कर्म के कर्ता हैं और फल के भोक्ता हैं। हम सुखी—दुःखी होते हैं और भगवान परम स्वतंत्र है।"

इस प्रकार से पण्डितजी ने अपना सिद्धांत समझाया। बापू ने बड़े धैर्य से यह सब सुना, फिर विशाल जन समूह की ओर देखकर बोले—

"देखो भाईयों! 'हम जीव हैं' यह बात तो धूलाराम का लड़का यह साधारण जूते सीने वाला मोची भी जानता है—सभी जानते हैं, इसमें कौन महानता है। यदि यही सिद्धांत सिद्ध करने के लिये १८ पुराण और वेद किसी ने पढ़े हैं और साधना की है तो धिक्कार है उनकी ऐसी पढ़ाई और उसमें की गई समय की बर्बादी को।

पढाई तो वह है जो जीव में शिव का दर्शन करादे। साधना तो वह है जो साधक को सिद्ध बनादें। सच्ची विद्या तो वह है जो हमें बन्धन से मुक्त करादें, हमें अपने परमेश्वर त्व का भान करादे—'सा विद्या या विमुक्तये'। सदियों से हम भटकते आये हैं। कितने ही जन्म बाप, बेटे, पति, पत्नी, आदि बनकर गुजारते आए हैं और अपने अन्दर स्थित सत्-चित-आनन्द स्वरूप को न पहचानकर हमेशा से दीन बने हुए हैं। 'प्रभु हमें यह दो वह दो' की मांग करते हुए ही जीते आ रहे हैं। विद्या, पाण्डित्य और साधना का क्या यही फल है?

दीनताकूँ त्यागि नर, अपनो स्वरूप देखि।
तूतौ सुद्ध ब्रह्म अज, दृश्य को प्रकासी है॥
आपने अज्ञान तैं जगत सब तूं ही रचै।
सर्व को संहार करै, आप अविनासी है॥
मिथ्या परपंच देखि, दुःख जिन आनि जिय।
देवनको देव तूं तौ, सब सुखरासी है॥
जीव जग ईस होय, माया सैं प्रभासैं तूं ही।
जैसे रज्जु साप सीप, रूप है प्रभासी है॥

इसलिये, संसार में हम आए हैं तो हमारा सबसे प्रमुख और श्रेष्ठ कार्य है—हम अपने आपको जानें, आत्म साक्षात्कार करें और सदियों से चली आई दीनता को त्याग कर मुक्त हो जायें।

कई लोग इस तथ्य को नहीं समझ पाते और कहते हैं, हमें दुनिया का कल्याण करना है, समाज का सुधारा करना है।

समाज का तो सुधारा करना है और अपने आप का सुधारा हुआ हैं कि नहीं इधर उन्हें ख्याल ही नहीं है। अरे, दुनिया का तुम क्या कल्याण करोगे ? तुम अपने आप को ही नहीं जानते और चले हो दुनिया को उपदेश करने! कहाँ है जगत में अकल्याण ? जरा अपनी दृष्टि को सुधारो, अपनी वासनाओं को काबू करो, फिर देखो, दुनियाँ में कहाँ अकल्याण नजर आता है। स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे—ओ दुनिया के सुधारको, जरा अपनी जात पर तरस खाओ ! यदि तुम्हें अभी भी जगत में अकल्याण नजर आता है तो तुम पहले तो अपने आप पर रोओ कि तुम्हें ऐसा दिखता है।

जगत को कभी कोई सुधार सका है? कई पीर, औलिया, फकीर, अवतार आए और चले गए, मगर फिर भी यह दुनिया सुधरी है कभी? यह दुनिया कुत्ते की पूंछ की तरह है। थोड़ी देर इसे पकड़े रहो। फिर छोड़ी तो टेढ़ी की टेढ़ी।

या खून पसीना कर के बहा,
या तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जायेगी,
तू हँसता रह या रोता जा।

अपनी दृष्टि ठीक करलो, आत्म ज्ञान प्राप्त कर लो, फिर देखो, दुनिया कहाँ से खराब है? यह संसार सब हमारे मन से ही रचा है। सब हमारे मन का खेल है। सब हमारे संकल्प का चमत्कार है।

'गणानाम पति इति गणपतिं।'

इन्द्रियाँ मन बुद्धि चित्त आदि ये सब उस आत्मदेव के गण हैं। इन सब मन–बुद्धि आदि को चेतना शक्ति जो आत्मदेव देते हैं वे ही गणपति हैं। यही लक्ष्यार्थ है। इस लक्ष्यार्थ की ओर तो हम देखते नहीं और बडा सा पेट, हाथी की सूंड़ वाला चेहरा बनाकर गणेशजी खड़े कर देते हैं। उनको पूजते रहते हैं और उनसे कुछ न कुछ मांगते रहते हैं। भाई, यह तो स्थूल बुद्धि वालों को समझाने के लिये शास्त्रकारों ने इस प्रकार व्याख्या की है और हम! बस मूर्ति बनाकर उन्हीं के पीछे पड़े हैं।

जब तक ज्ञान नहीं होगा तब तक हम भटकते ही रहेंगे, भले जगत के कितने ही सुधारे करलें।

कई तो साधक भी अच्छी भूमिका में पहुँचकर अटक जाते हैं। एक व्यक्ति यहाँ आता है। आप में से कईयों ने उसे देखा भी है। उसको कई अतिन्द्रिय अनुभव होते हैं। मेरा सत्संग कहाँ कहाँ, कब कब होगा यह उसने एक दो बार पहले ही बता दिया था। कौनसी वस्तु कहाँ पड़ी है, कहाँ से मिलेगी यह भी कईबार वह बता देता है। उसकी साधना की बड़ी अच्छी स्थिति है। वह अपनी देह का भान भी भूल जाता है। भविष्य बता देना या कौन सी वस्तु कहाँ पडी है, कहाँ मिलेगी बता देना यह भी कोई पराकाष्ठा नहीं है साधना की। फिर भी ऐसे लोग जन समाज में तो पूजे जायेंगे। मगर वे भी फंसे हुए हैं। वे भी अटके हुए हैं।

मन की एकाग्रता से कई सिद्धियाँ आती हैं। संकल्प सिद्ध होने लगते हैं। भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभास भी मिलने लगता है, मगर यदि साधक सावधान नहीं रहा या उसे मार्ग-दर्शन ऐसे वक्त पर ठीक नहीं मिला तो वह इन्हीं में फंस जायेगा।

यहाँ भी बन्धन है। मुक्ति यहाँ भी नहीं है। ये शक्तियाँ आदि भी मन के ही खेल हैं। मन से साधक पार नहीं हो पाता। और उस व्यक्ति का भी यही हाल है। यहां आया था और यदि वह चाहता तो बहुत आध्यात्मिक लाभ ले सकता था, मगर नहीं ले पाया। उसने भी यहाँ आकर वही मांगा जो सभी संसारी मांगा करते हैं। वह बोला, "स्वामीजी! ऐसा आशीर्वाद दो कि मेरा परिवार ठीक हो जाय। मेरी दैन्य स्थिति सुधर जाय।"

अब बताओ, इस स्थिति में भी वह वासनाओं में फंसा पड़ा है। यदि वह वासना से मुक्त हो जाय, उसे ज्ञान हो जाय कि मैं कौन हूँ तो सब उसी का ही है। उससे बाहर कुछ है ही नहीं। फिर उसे आनन्द के लिये कहीं जाना ही नहीं है। फिर तो वह स्वयं आनन्द लुटाएगा, क्योंकि वह स्वयं आनन्द स्वरूप ही है।

लेकिन मन से पार हो जाना–यह कोई इतना आसान काम नहीं है। त्रिगुणमयी माया के पार जाना सरल काम नहीं है। भगवान श्री कृष्ण गीता के सातवें अध्याय में कहते हैं–

'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।'

मेरी यह अलौकिक अर्थात् अति अद्‌भुत त्रिगुणमयी योगमाया बड़ी दुस्तर है। इसको तर जाना बहुत दुर्लभ है।

भगवान कृष्ण भी जिसको दुर्लभ कहते हैं वह सुलभ कैसे हो? वह आत्मनिष्ठ संत सुलभ कर देते हैं। मगर आत्मनिष्ठ संत भी तो सुलभ कहाँ हैं? श्रीकृष्ण स्वयं आगे कहते हैं–

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥१९॥

जो बहुत जन्मों के पश्चात् अंतिम जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ है, जो सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेव के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं इस प्रकार तत्त्व से मेरे को जानता है, वह महात्मा 'सुदुर्लभः' यानी अति दुर्लभ है।

भगवान श्रीकृष्ण भी जिसे दुर्लभ कहते हैं ऐसे महात्मा का मिलना यानी रेगिस्तान में पानी की खोज करना है। मगर यदि हमारे पूर्व जन्मों के पुण्य कर्म प्रबल हैं और हम सच्चे अर्थों में जिज्ञासु हैं तो ऐसा भी संयोग हो सकता है–हो जाता है। और यदि एक बार हो गया और हम उनके पथ–प्रदर्शन में–उनके पावन सान्निध्य में विनयपूर्वक श्रद्धापूर्वक रहे तो फिर लक्ष्यसिद्धि दूर नहीं है। ढील उनकी तरफ से नहीं होती। हम अपनी योग्यता बढायें, एक सच्चे जिज्ञासु साधक के गुण अपने में लाएं और बिना इधर उधर के मोह में फंसे चलते रहें अपने पावन पथ पर–अपने साधना पर। रुकें नहीं और उस पद में प्रतिष्ठित होकर ही रहें जिसके लिये बड़े–बड़े योगी भी तरसते हैं। ॐ

कुण्डलिनी योग

(ध्यान योग साधना शिविर, ३ अप्रेल १९७६, आश्रम)

दोपहर का एक बज रहा है। सत्संग भवन में स्वामीजी के सम्मुख सभी साधक बैठे हैं। एक भक्त ने अभी एक भजन गाया है जिसका भावार्थ है—

'जिन्होंने स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख पहुँचाया है, जिन्होंने स्वयं सूरज की धूप सहनकर दूसरों को छाया दी है— उन पर मैं कुर्बान जाता हूँ ...'।

स्वामीजी—

वाह ! वाह !! क्या भाव है ! उन महापुरुषों को धन्य है जिन्होंने अपना अनुभव संसार के लिये करूणा करके उपलब्ध कराया। जो स्वयं जङ्गलों में, पहाड़ों में, नदियों के किनारे वर्षों

भटकते रहे और जो कुछ पाया, अनुभव किया, जाना—उसे साथ नहीं ले गए, अपितु अन्य प्यासे लोगों को संसार में आकर अपने अनुभव अमृत का पान कराया, वे महापुरुष धन्य हैं।

यह संसार रेतीला रास्ता है जिसमें सुखका प्यासा मनुष्य पानी रूपी सुख की खोज में सदियों से, जन्म जन्मान्तरों से भटक रहा है। इसमें उसे पानी रूपी सुख कहाँ से मिलेगा ? ऐसे रेतीले, तपनभरे दुरुह रास्ते में उस पानी रूपी सुख की खोज करते करते यदि कोई ऐसा मस्त मौला मिल जाय जिसने सदियों की प्यास बुझाने वाले आनन्द अमृत को पा लिया है, और उस मस्त मौला द्वारा पानी की बजाय अमृत की प्राप्ति हो जाय तो फिर कहना ही क्या ? उसे जो आनन्द होगा वह अकल्पनीय है। वह असीम है।

स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्य क्षय होते हैं और रागद्वेष बढता है। परन्तु यह अमृत रस, ब्रह्म रस पीने से पाप क्षय होते हैं और राग द्वेष खत्म होते हैं। साधकों में जो नये हैं उनको भी इस शिविर में जो उस रस की (आनन्द की) झलक मिली है, वह वे ही जानते हैं। कल शाम को नदी की रेत में जब सभी साधक उस आनन्द में विभोर हो रहे थे वह दृश्य वस्तुतः अवर्णनीय था। (रात्री को स्वामीजी ने नदीमें सबको ध्यान कराया था) **संसार के सभी सुखों को मिलाकर तराजू के एक पलडे में रखें फिर भी वह ध्यान के सुख के एक झलकारे के आगे भी फीका है।** यह केवल एक साधक या साधिका या मेरा ही नहीं, सबका

यही अनुभव है। वह मस्ती, वह दीवानापन अलौकिक है, जहाँ दीवानापन और दीवाना अलग नहीं रहते। प्याला और पीनेवाला, चाह और चाहक दो नहीं रहते। वहाँ मद भी वही, पीने वाला भी वही। उस स्थिति में जब साधक पहुँचता है तो वह भाव विह्वल हो उठता है और सोचता है हम इतने दिन थे कहाँ? जब वह मस्ती आती है तो वह भूल जाता है मैं कौन हूँ, वह भूल जाता है मैं कहाँ हूँ, वह भूल जाता है मैं क्या हूँ? सब कुछ भूल जाता है। संसार की उलझनों से परेशान–थकित हम लोग जब ऐसे महापुरूषों के, ऐसे संतों के संग में आते हैं तो उनके करूणापूर्ण आशीर्वाद के सहारे हममें एक आनन्द की हिलोर आ जाती है और हम अपने को बदला हुआ पाते हैं। तब हम उस बेचैनी, उस दुःख को भी, उस चिन्ताशील स्थिति को भी धन्य-वाद देते हैं जिसने हमें यह आनन्द देनेवाले सन्तों के चरणों में पहुँचाया है।

(लेखक रात्रि को नदी में स्वयं भी उपस्थित था। वास्तव में वह दृश्य ही ऐसा था। सैकडों साधक :जब ध्यान में झूम रहे थे अपने आप को भूलकर, कोई भाव विभोर हो रहा था, कोई गा रहा था, कोई रो रहा था, कोई खिलखिला रहा था तो उस दृश्य को देखकर कोई भी पागल हो जाय। ऊपर से पागल से दीखनेवाले उन साधकों को जो अन्दर में उनको आत्मिक आनन्द हो रहा था वह अवर्णनीय था।)

बचपन में मैंने एक कहानी सुनी थी। एक राजकुमारी थी गूंगी–बहरी। वह कभी न बोलती थी, न हँसती थी। उसको बुलाने के सब प्रयत्न असफल सिद्ध हुए। आखिर वजीरों के कहने से राजा ने घोषणा की कि जो इसको हँसा लेगा या बुलवा लेगा उससे इसकी शादी कर दी जायगी और आधा राज्य भी दे दिया जायगा। अपनी किस्मत आजमाने कई राजकुमार और जादूगर–बाजीगर आए, परन्तु सब असफल हुए।

एक सत्संगी को भी इस घोषणा का पता लगा। उसने अपने गुरु से कहा कि आप मुझे कोई अटकल बतावें। गुरुजी ने कहा, 'बच्चा! इस झंझट में मत पड़ो।' परन्तु वह नहीं माना तो गुरुजी ने कहा, "अच्छा, यह सुहावनी बतक ले जाओ। इसमें अपना संकल्प भर लेना और 'मैं करता हूँ' यह भाव मत रखना। सब भगवान को अर्पण करके कर्म करना जाओ!"

वह बतक लेकर राजमहल में पहुँचा। एक दासी ने देखा तो वह गुस्से में भरकर उसको निकालने के लिये डंड़ा लेकर उसके पीछे दौड़ी और ज्योंही उसके डंडे ने बतक को स्पर्श किया त्योंही डंडे सहित वह उस बतक को चिपक गई। दूसरी दासीने यह देखा तो वह दासी उसको छुड़ाने दौड़ी। किंतु वह भी चिपक गई। यह देखकर उसका पति दौड़ा, परन्तु वह भी उससे चिपक गया। उसको छुडाने उसका लड़का आया और वह भी चिपक गया। ऐसे जो जो छुडाने आए वे सब चिपकते रहे। एक लम्बी

रेल गाड़ी बन गई। राजकुमारी यह सब देख रही थी। जब उसने यह अजीब सा खेल देखा कि जो आया वही फँसा तो वह हँस पडी और बोली।

अरे...रे....रे! देखो बतक! देखो बतक!!

तो योग साधना भी ऐसी ही बतक होती है। जरा सी किसी ने उसकी झलक पाली वह फिर इधर उधर नहीं जा सकता। (मुस्कराते हुए) जो भी एक बार इधर आया, भले किसी बहाने से परन्तु उस आनन्द की एक झलक भी उसे मिल गई, फिर वह वापस नहीं जा सका।

(सब हँस पड़ते हैं, क्योंकि सभी का यह निजि अनुभव है।)

प्रेम एक ऐसी चीज है जहाँ कायदा भी निष्प्रयोजन हो जाता है। ऐश्वर्य और सत्ता वहाँ बीच में बाधा नहीं बन सकती। हम भले ही ओफिस में हो या दुकान पर या कहीं भी, यदि एक बार उस बतक में दिल सरोबार हो चुका है तो फिर पुनः पुनः आए बिना नहीं रह सकते।

जिनका हृदय परमात्मा के आनन्द से भरा हुआ है उनके हाथ की प्रसाद भी खाने से सज्जन हृदय इतना गद्गद् हो जाता है तो जिनके हाथ से प्रसाद ली है उनके हृदय में कितना आनन्द होगा! वे कितने आनन्दमय होंगे!

ऐसे तत्वज्ञानी महापुरुष के सान्निध्य में साधक जब ईश्वर

के रास्ते आगे बढ़ता है तो महापुरुष की अहैतुकी कृपा से साधक के भीतर सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है और उसको अपने भीतर अलौकिक परिवर्तन अनुभव होने लगते हैं। वह शक्ति जागृत होकर उस व्यक्ति की हर नस–नाडी को सुधारती है। अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा वह जन्म से शरीर में पड़े हुए मल को निकाल बाहर करती है। साधक में मेंढक और बन्दर की तरह उछलने कूदने और विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ होने लगती है–जैसे उसे कोई भूत लग गया हो। परन्तु यह भूत अनेक जन्मों से लगे हुए सभी भूतों को भगाने वाला भूत होता है।

अपने सुपरिचित श्री लालजी महाराज (नर्मदा किनारे नारेश्वर) के पास कृष्णाबेन साधना करती हैं। आप में से कई लोग उनसे परिचित हैं। एक बार कृष्णाबेन अपने साधना कक्ष में ध्यान में बैठी थी तो साधना से उनकी कुण्डलिनी जाग उठी। लालजी महाराजने देखा कि वह प्रातः ४ बजे की बैठी हुई अभी दोपहर के २ बजे भी बाहर नहीं निकली तो उनको संदेह हुआ। उन्होंने दरवाजे को धक्का मारा तो वह अन्दर से बन्द था। किसी सुराख से अन्दर झांका तो अन्दर कूदम–कूद मची हुई थी। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। जैसे तैसे दरवाजा जब खुला और उसको पूछा कि यह क्या कर रही थी तो उसने कहा, "मुझे तो पता नहीं क्या हुआ, परन्तु आज हृदय में इतना आनन्द आनन्द हुआ है कि क्या कहूँ? किन्तु महाराजश्रीने ऐसा कभी देखा

नहीं था । और जब मेरे आगे यह सब बड़े आश्चर्य के साथ वर्णन किया तो हमको हँसी आ गई । उन्होंने पूछा, 'यह सब क्या था ?' मैंने उन्हें कहा कि अभी तो हुआ क्या है ? अभी तो शुरूआत है । आगे और भी देखेंगे ।

यदि घर पर किसी साधक को ऐसा हो जाय तो तुरन्त टेलीफोन से डाक्टर बुलवा लेंगे, या पागलखाने की मोटर आकर खड़ी हो जायगी (हँसी) । सब को ऐसा नहीं होता, परन्तु जिन जिन चक्रों में महामाया शक्ति प्रवेश करती है उन उन के अनुसार शरीर में क्रियाएँ होती हैं ।

भीतर अनन्त जन्मों के संस्कारों की भरी हुई टेप (पट्टी) खुलनी शुरू हो जाती है तो साधक से इस प्रकार की क्रियाएँ और मुद्राएँ होने लग जाती हैं । यदि किसी जन्म में वह शेर रहा है तो वह ध्यानावस्था में शेर की तरह पंजे रखते हुए और आवाज करते हुए चलेगा । अर्थ यह है कि मन जब भीतरी साधना में चला जाता है तब ऐसी क्रियाएँ होती है । फिर शान्त अवस्था भी आती है । देखने वालों को ऊपर से कुछ भी पता नहीं चलेगा उसकी भाव दशा का । **यदि कोई केवल देख कर ही उसकी भावदशा के बारे में जजमेंट (निर्णय) देगा तो वह सही नहीं दे सकेगा । यह तो जिन को होता है वे ही जानते हैं ।**

योग साधकों के लिये ध्यान रखने योग्य आवश्यक बातें

बहुत खुली जगह ध्यान में नहीं बैठें ।

सांप बिच्छु जैसे जहरीले प्राणियों का जहाँ आतंक हो, ऐसे स्थान पर भी नहीं बैठें ।

ध्यान के लिये एकान्त कक्ष हो तो बहुत ही उत्तम । उसे सदैव स्वच्छ रखें । सुगंधित गूगल या अन्य धूप उसमें करते रहें । उस कमरे में किसी अन्य का प्रवेश निषिद्ध कर दें । हाँ, यदि साधना में कोई हमसे ऊँचा है तो उसे अवश्य प्रवेश कराएं--उससे हमें लाभ ही होगा ।

यदि एकांत कक्ष न हो तो घर का ही कोई कोना पर्दा आदि लगाकर सुरक्षित करलें ।

ध्यान का स्थान एवं आसन निश्चित रखें, बार बार बदलें नहीं ।

आसन के लिये कोई ऊनी वस्त्र तीन चार बार तह किया हुआ या कोई गर्म कम्बल रखें और उस पर शुद्ध शुभ्र सूती वस्त्र बिछालें।

अपने शरीर के अनुकूल हल्का व्यायाम, कुछ आसन एवं प्राणायाम नियमित रूप से किया करें।

प्रातःकाल गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से रगड़ रगड़ कर स्नान किया करें, जिससे शरीर में स्फूर्ति रहेगी और ध्यान में तल्लीनता आयेगी। स्नान के बाद धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहनें।

अपने कपड़े–बिस्तर आदि अलग रखें। क्यों कि साथ में रखने से दूसरों के अपने अपने संस्कारों के सूक्ष्म परमाणु और विचारों का प्रभाव हमारे ध्यान में बाधक बनेगा। सूक्ष्म जगत में इन परमाणुओं का बड़ा असर होता है।

भोजन करके तुरंत ध्यान में नहीं बैठें। कम से कम ढाई–तीन घंटे बाद बैठना चाहिये। यदि दूध या केवल फल ही लिया हो तो आध–पौन घंटे बाद ही बैठ सकते हैं।

ध्यान के लिये सिद्धासन, पद्मासन या सुखासन जो आसन अनुकूल हो उसमें बैठें और अनुलोम–विलोम प्राणायाम करें। ये प्राणायाम २० से २५ बार तो कर लेने ही चाहिये।

ध्यान करते समय मन की प्रसन्नता बहुत आवश्यक है। खूब प्रसन्नचित्त होकर ध्यान के लिये बैठें, फिर बाहर की आवाजों की तरफ कतई ध्यान न दें।

जगत के बाह्य विचारों एवं शंकाओं से मन को खाली कर दें। जो होना है वह होता रहेगा, नहीं होना है तो नहीं होगा–ऐसे निश्चित होकर ध्यान में बैठें।

ध्यान के समय मन स्वाभाविक है इधर उधर दौडता है। आप उसके साथ संघर्ष नहीं करें। जैसे चञ्चल बालक को धैर्य से समझाया जाता है, वैसे ही उसे समझाकर इधर उधर के विषयों से खींच लावें।

फिर भी यदि दौड़ता है तो उसे दौड़ने दें, आप उसे देखते रहें–उसके साक्षी बन जाएं। जैसे चोर को देखते रहें तो वह चोरी करने से सकुचा जाता है, वैसे ही मन भी सकुचा जाता है।

ध्यान के समय आलस्य या निद्रा भी कभी कभी आती है। उससे बचो। लम्बे स्वर से ॐ की ध्वनि करो या प्राणायाम करो। इससे यह विघ्न दूर हो जाएगा।

मन में यदि बुरे बुरे विचार आने लगे हों तो उन्हें भगा दो। ओऽऽऽम् की लम्बी ध्वनि करो। दुर्बलता के विचार हटाकर आत्म–भाव जगाओ।

योग–साधक कभी यह ख्याल नहीं करें कि लोग मेरे लिये ऐसा–ऐसा क्यों बोलते हैं? प्राणोत्थान होने पर तो शरीर से विभिन्न क्रियाएं भी होने लगती हैं। उस समय तो घर के लोग भी बोलने लगेंगे कि ध्यान में तुम यह क्या करते हो? छोड़ दो

यह ध्यान-व्यान सब ! अपने को यह शोभा नहीं देता । इसलिये यदि लोगों की पसंदगी या नाराजगी की परवाह की तो रह जाओगे-भटक जाओगे ।

ध्यान में होने वाले अनुभवों की जन साधारक से चर्चा नहीं करें । जरूरी लगें तो किसी योग्य साधक से ही बात करें ।

मैं कुछ विशेष योग साधक हूँ, बाकी लोगों से विशिष्ट हूँ— ऐसा लोगों में व्यक्त होने वाला व्यवहार भी नहीं करें । इससे अहं-कार बढ़ता है । अपने व्यवहार में नम्रता और धैर्य का गुण लावें ।

ध्यान का अभ्यास जब तक चालू है ब्रह्मचर्य पालन की ओर सतर्कता से ध्यान दें ।

साधक का भोजन सात्विक और सुपाच्य होना चाहिये । उसमें दूध, फल, मूंग एवं हरी तरकारियों की मात्रा अच्छी रखनी चाहिये ।

गरिष्ट भोजन से बचें । ऐसा भोजन हाजमा बिगाड़ता है और अलस्य पैदा करता है ।

तामसी पदार्थों जैसे कि लहसुन, प्याज, ज्यादा मिर्ची, तेज मसाले, मांस, मदिरा, तम्बाकू आदि से बचें । ये मन को विकारी बना देते हैं ।

रात्रि को गर्म गर्म दूध पीकर नहीं सोएं, क्यों कि इससे नींद में वीर्यपात होने का भय रहता है ।

अच्छे लोगों से संग रखें । अधिक सांसारिक व्यवहार, शादी-ब्याहों के झमेले, मित्रों की गपशप आदि में कम से कम उलझें । नाटक-सिनेमा आदि में अपना समय व्यर्थ न गंवाएँ ।

ध्यान में बैठते समय और ध्यान से उठते समय 'मैं कौन हूँ' ऐसे प्रश्न अपने आप से पूछते रहें । 'मैं शरीर नहीं हूँ बल्कि शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों से परे असंग शुद्ध आत्मा हूँ'-इस प्रकार का चिंतन बार बार करते रहें ।

पंचदशी, पंचीकरण, योगवासिष्ठ, गीता, उपनिषद् आदि वेदान्ती ग्रंथ पढ़ें । इधर उधर की ऐसी वैसी पुस्तकें पढ़कर समय खराब नहीं करें । स्वाध्याय और तत्वनिष्ठ महापुरूषों के सांनिध्य में वेदांत श्रवण बहुत जरूरी है ।

वाणी पर नियंत्रण करें । यथासंभव उतना ही बोलें जितना जरूरी हो । अधिकतर मौन रहने की चेष्टा करें ।

जिस साधक का प्राणोत्थान नहीं होता हो वह अपनी दृष्टि मूलाधार चक्र पर ले जाकर यह संकल्प करें कि हे महामाया कुण्डलिनी माता, जागो !....ऐसी साधक की प्रार्थना और संत अथवा गुरु-कृपा से जब यह शक्ति जागृत हो जाय तो शरीर उसी के भरोसे छोड़ देना चाहिये । जो होता है होने दें । आप तटस्थ दृष्टा बनकर देखते रहें ।

जब प्राणोत्थान होगा तो ध्यान में उस समय अपने अपने

संस्कारों के अनुसार क्रियाएं, मुद्राएं, आसन और देवदर्शन आदि होंगे। जोर जोर से हँस पड़ना और रोना भी होगा। भयानक दृश्य भी दिखेंगे। मगर इन सब से घबराएं नहीं और साधना चालू रखें। ये सब बातें सिनेमा की रील की तरह गुजर जाएंगी। जैसे सिनेमा में भयानक और सुन्दर दृश्य दिखते है, फिर भी दृष्टा उन से पृथक् ही रहता है वैसे ही 'मैं इन सब दृश्यों से अलग साक्षी आत्मा हूँ, मै आनन्द स्वरूप हूँ' ऐसा मनन निःसन्देह रूप से करता रहे।

कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ऊपर उठती है और विभिन्न चक्रों का भेदन करती है उस समय कभी कभी काम वासना बहुत सताती है। इस से यह शंका भी खड़ी हो सकती है कि ध्यान–भजन आदि से तो कुवासना नष्ट होनी चाहिये, मगर यह तो बढ़ रही है–ऐसा क्यों? इसका कारण यह है कि इस समय वीर्य विपुल मात्रा में बनता है, इस कारण से साधक को काम का आवेग होता है। ऐसे समय में ठंडे पानी से हाथ पैर धोने चाहिये और पाद–पश्चिमोत्तानासन करना चाहिये। इस से धीरे धीरे काम वासना क्षीण होकर मिट जाएगी। फिर भी यदि विशेष फायदा न हो और किसी वक्त शरीर की प्रकृति के कारण गडबड हो जाय तो अपने श्रद्धेय संत अथवा गुरु को याद करें और बिल्कुल चिंतित नहीं होवें। अपना अभ्यास चालू रखें। धीरे धीरे अपने आप काम वासना का शमन हो जाएगा। यहीं पर कई

साधक घबरा जाते हैं। साधक पहले से ही सावचेत् रहे।

ध्यान में कई बार साधक लेट जाता है। इस समय ठीक है कुछ देर के लिये लेटा लेटा ही ध्यान करता रहे, मगर सोते सोते ही ध्यान करने का अभ्यास न हो जाय यह विशेष ख्याल रखें। क्योंकि लेटे लेटे ध्यान में प्राणों के दवाब से वीर्यपात या एकाएक लघु शंका करने का रोग लागू हो जाता है। इसलिये सोते सोते ध्यान करना सामान्य साधक के लिये जोखम भरा है।

गंभीर रोग में अथवा तेज बुखार के समय ध्यान में नहीं बैठना चाहिये।

कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने के कुछ सामान्य लक्षण–

रीढ़ की हड्डी में कुछ सरसराहट सी होती है, जैसे कई सारी चीटियाँ घूम रही हो–ऐसा लगता है।

शरीर में झनझनाहट और कम्पन होता है। कभी माथा भारी लगता है।

साधक की श्वास क्रिया अपने आप तेज हो जाती है। कभी मंद भी पड़ जाती है।

नाभी–स्थल के पास पेट में खिंचाव पैदा होता है जिसे उड्डियन–बन्ध कहते हैं। यह क्रिया होती है तब साधक को दस्तें भी लगती हैं। यदि एक दो दिन ऐसा हो तो घबराना नहीं चाहिये, यह अपने आप ठीक हो जाता है।

मूलबंध, उड्डियन बंध, जालन्धर बंध और खेचरी मुद्रा आदि अपने आप होने लगते हैं।

सिर में प्राण का प्रवाह चलता हुआ सा महसूस होता है।

कईबार 'मैं असंग आत्मा हूँ, द्दष्टा हूँ, शुद्धबुद्ध निर्विकार, आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हूँ–ऐसा अनुभव होता है' और यह अच्छा है। यह वृत्ति दृढ़ करते रहना चाहिये।

शरीर गोल गोल अथवा दायें बाएं घूमने और झूलने लगता है। कोई सर्प की तरह कोई मैंढ़क की तरह चलता और कूदने लगता है। कोई सीटी बजाता है, कोई भजन या गाना गाता है और कोई चिल्लाता है। कोई पेड़ पर भी चढ जाता है और मुँह से विचित्र आवाजें निकालता है।

हाथों की विभिन्न प्रकार की क्रियाएं होने लगती हैं। मणीपुरी, कत्थक, भरतनाट्यम्, भांगडा आदि नृत्यों की मुद्राएं होती हैं।

कोई खड़े हो जाते हैं तो कोई शांत भाव से बैठ रहते हैं। कोई कोई कभी न बोले हों ऐसे श्लोक और मंत्र अथवा शेर भी बोलते हैं।

कई बार ध्यान नहीं कर रहे होते हैं उस समय भी किसी प्रवृत्ति में मन की एकाग्रता से शरीर में प्राण के संचालन होने से शरीर में एक विशेष प्रकार का कम्पन होता है और कभी शरीर दुखता भी है। कभी शरीर का तापमान कम अधिक होने लगता है, परन्तु इन बातों से घबराना नहीं चाहिये, क्योंकि यह अधिक समय नहीं होता है और अपने आप शांत हो जाता है।

कईयों को इस प्रकार की साधना में कब्ज भी हो जाता है और पाखाना (शौच) नहीं आता। ऐसा होने पर दूध में आधा

तोला इसबगोल डालकर सुबह शाम पीना चाहिये या रात को सोते समय एक गिलास गर्म पानी पी ले। भोजन में पालक, करेला आदि हरे शाक की मात्रा बढा लेने से भी यह शिकायत दूर हो जाएगी।

यदि दस्त अधिक आते हो और बन्द नहीं होते हों तो दही में आधा तोला इसबगोल डालकर खा लेवे। चाहें तो इसबगोल दही के साथ अधिक भी ले सकते हैं। वायु करें तो थोडी सोंठ (सूखी अदरक) भी डाल लेवें।

ऐसे समय ध्यान में किसी को शंखनाद, घंटानाद अथवा अन्य कोई दैवी नाद भी सुनाई देते हैं। अनेक बार कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं और अन्दर ही अन्दर अपने आप उनका समाधान भी हो जाया करता है।

किसी किसी को ध्यान में प्रकाश पुञ्ज, तेजोवलय, तारे, देव मंदिर, देव–देवियाँ, गुफाएँ, झरने, पहाड़, शिवलिंग, सिद्ध महात्मा एवं संत, पुष्प–समूह, यज्ञकुण्ड, हाथी–घोडे, जंगल आदि के दर्शन होते हैं।

अन्य बातें–

शरीर में यदि गर्मी बढ़ी हो तो रात को सोने से दो घंटे पूर्व दूध मे थोड़ा घी डालकर पीयें।

शरीर ठंडा हो रहा हो तो तुलसी का रस आधा अथवा पौना तोला और पांच काली मिर्च पीसकर दोनों को मिलाकर

पीएँ। आवश्यक लगे तो मात्रा बढ़ा दें। साथ में शहद भी लिया जा सकता है। अजवाईन (अजमा) महीन पीसकर शरीर पर घर्षण करने से भी गर्मी आती है। जरूरत लगे तो गर्म पानी से सेक भी किया जा सकता है।

कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होने के बाद अनिद्रा और बेचैनी का अनुभव होता हो तो नीचे बताई गई विधि के अनुसार तेल बनाकर सिर कनपटी और पैरों के तलुओं पर मालिश करें।

दुधी का तेल बनाने की विधि–

२५० ग्राम तिल अथवा नारीयल का तेल लें। सवा कीलो दुधी (लौकी) लेकर उसको छोटे छोटे टुकडों में काटकर पीसें और महीन कपड़े से मजबूती से छानकर उसका पानी निकाल लें।

तेल को एक बर्तन में धीमीं आँच पर उबालें। जब थोडा गर्म हो जाय तब उसमें दुधी का निकाला हुआ पानी धीरे धीरे डाल दें। अब दोनों को उबलने दें। जब सारा पानी जल जाय तब तेल को उतार कर ठंडा होने के लिये रख दें। ठंडा होने पर उसे एक बोतल में भरकर रख लें।

यह तेल बदाम रोगन (बादाम का तेल) का छोटा भाई कहलाता है। सप्ताह में एक दो बार इस तेल की शरीर पर मालिश करने से बहुत लाभ होते हैं। संक्षेपमें, इससे स्मरण शक्ति बढ़ती है, मस्तिष्क में ठंडक रहती है और दिमाग को बल मिलता है।

योगसाधकों के अनुभव

सूक्ष्मलोकों के मानवों का दर्शन किया–

"आप ८ दिन तक आश्रम के मौन मंदिर में रहे। आप को इस बीच कोई विशेष अनुभव हुए हों तो बताएं।"

लेखक ने परशुरामभाई को आग्रह के साथ पूछा। परशुराम भाई सरदारनगर टाऊन शिप की एडमिनिस्ट्रेटर आफिस में डेपुटी मामलतदार है। उन्होंने कहा–

मैं आश्रम के मौन मंदिर में २९जुलाई, रविवार से ५ अगस्त रविवार (सन् १९७९) तक रहा था। भीतर ही भोजन की थाली आ जाती थी और स्नान पानी की सब व्यवस्था अन्दर ही थी। मेरे कमरे का बाहर से बड़ा ताला लगा दिया गया था। ८ दिन तक एक ही कमरे में बंद रह कर साधना करने का मेरे जीवन में यह प्रथम ही प्रसंग था।

सोमवार रात्री को सो कर सुबह मंगलवार को ४॥ बजे मैं ध्यान में बैठा तो एक विचित्र दृश्य ध्यान में दिखा । एक स्त्री अर्धनग्नावस्था में मेरे सामने आखड़ी हुई थी । मैं चौंक उठा....! मुझे तुरंत ख्याल आ गया कि यह मेरी साधना में विघ्नरूप बनने के लिये आई है । मैंने अपने गुरुदेव को याद किया । थोड़ी ही देर में देखा–एक कोने में गुरुदेव भी आ खड़े हुए थे । अब मेरा भय जाता रहा । मगर गुरुदेव को देखकर वह स्त्री भी वहाँ से तुरंत लोप हो गई ।

उसी दिन शाम को मन में ऐसा ख्याल उत्पन्न हुआ कि अहमदाबाद में कई दिन से वर्षा नहीं हो रही है । हमारे स्वामीजी तो समर्थ हैं, वे चाहें तो क्या वर्षा नहीं हो सकती !....और घंटे भर बाद ही जोरों की हवा चलने लगी । आकाश में बादल घिर आए और वर्षा होने लगी । वाह, मेरे सद्‌गुरुदेव....!

मंगलवार की उसी शाम को ७–८ बजे करीब जब मैं ध्यान में बैठा हुआ था एक अप्सरा–सी सुन्दर स्त्री बहुत महीन पारदर्शक कपड़े पहने हुए आ खड़ी हुई । उसका अंग अंग सूर्य की किरणों की भाँति दमक रहा था । ऐसी स्त्री तो किसी ने भी इस पृथ्वी पर नहीं देखी होगी । वह किसी और ही लोक की होगी । काफी देर तक वह मुझे मोहीत करने की कोशिश करती रही । मैंने बहुत कोशिश की कि वह दृश्य सामने से हटें, मगर निष्फल रहा । आखिर गुरुदेव को बहुत करुण भाव से भीतर ही भीतर पुकारने लगा ।

थोड़ी देर बाद ज्योंही ध्यान टूटा तो मालूम हुआ कि बाहर से कोई दरवाजा खटखटा रहा है । मैंने खोला तो देखा, पूज्य गुरुदेव स्वयं दरवाजे पर खड़े हैं । उन्होंने मेरी ओर बडी मधुरता से निहारा, दो शब्द साधना में उत्साह के लिये कहे और आवश्यक निर्देश देकर चले गए ।

ऐसे दृश्य के तुरंत बाद पूज्य श्री के दर्शन पाकर मैं धन्य धन्य हो उठा !"

"अच्छा...फिर ?" लेखक ने आगे जानकारी के लिये पूछा ।

परशुरामभाई बोले–

फिर क्या....? ऐसा पहले हमने सुना था कि ध्यान में बैठने पर माया की शक्तियाँ ऐसी ऐसी परीक्षाएं तपस्वियों की लेती रहती थी । परन्तु अब तो मेरे लिये ये घटित घटना बन गई । कुछ दिन तो ठीक रहा अर्थात् ध्यान में ऐसा कोई दृश्य नहीं उपस्थित हुआ, शांति ही रही, मगर शनिवार को शाम को ९–१० बजे ध्यान में सामने की कुर्सी पर आकर एक नवयौवना बैठ गई और अपने नाज–नखरों से मुझे आकर्षित करने लगी । वह भी रूप लावण्य में बहुत सुन्दर थी और थोडे से जो महीन कपड़े वह पहने हुए थी उनमें से उसके सब अंग दिख रहे थे । वह स्वयं भी विभिन्न प्रकार से अपने अंगों को दिखा दिखा कर आकर्षित कर रही थी ।

मगर थोड़ी ही देर में दृश्य बदला और उस अप्सरा की जगह एक भयंकर दृश्य आ उपस्थित हुआ। उसी जगह अब एक दूसरी स्त्री आकर बैठी थी। वह रुग्ण थी। उसके सारे शरीर पर रोग फैला हुआ था। चेहरे पर किसी बीभत्स रोग के बड़े बड़े दाग फैले हुए थे। मुँह से खून, लार आदि निकल रहे थे। वह अपने रोगों के कष्ट से कराह रही थी। उसमें कोई आकर्षण नहीं था। उसको देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह बड़ी सुन्दर रही होगी। इस अवस्था में किसी को भी उसे देखकर दया आ जाय! ओह! वह कैसा कारुणिक दृश्य था! वह एक टक मेरी ओर निहारने लगी। फिर उस के भर्राए हुए गले से आवाज निकली—

अगर तुम पहले के सुन्दर दृश्यों से प्रभावित हो गए होते तो तुम्हारी कैसी दशा होती समझते हो? यह मुझे देख लो....! ऐसी होती तुम्हारी दशा भी! मैंने बहुत भोग भोगे हैं जीवन में और अब मेरी यह दुर्दशा हुई है। संसार में ऐसे भोगों में रत लोग कीड़े–मकौड़ों की भांति जीवन बिता कर जिन्दगी नष्ट कर रहे हैं। फिर उनकी भी मेरे जैसी हालत होगी.........तुम बच गए हो........तुम बचे रहे..."

यह वर्णन करते हुए परशुरामभाई का गला भर आया। फिर अपना स्वर संयत करते हुए कहा—

ओह, वह दृश्य ही बड़ा विचित्र था! मुझमें मेरे गुरुदेव के

प्रति बड़ा अहोभाव जगा कि उनके निर्देशनमें मैं साधना कर रहा हूँ—यह मेरे लिये कितने सौभाग्य की बात है! अन्यथा ऐसे ऐसे अवसरों पर साधक का पतन होते क्या देर लगती है....? जो बिना मार्ग दर्शक के–बिना गुरु के इस रास्ते पर आगे बढ़ते हैं, उनकी क्या हालत होती होगी।....मेरे गुरुदेव समर्थ हैं, वे हर पल मेरा ध्यान रखते हैं। फिर परिवार का क्या होगा....पत्नी-बच्चों का क्या होगा आदि चिन्ताएं मैं व्यर्थ में करता हूँ! जब सद्गुरु पर सब छोड़ दिया है तो फिर चिन्ता करने वाला मैं होता कौन हूँ? ऐसा भाव मेरे मन में आया तो एकदम जैसे सब वातावरण ही बदल गया। जी हल्का हुआ और मन ही मन मैंने गुरुदेव को शीश झुकाया।

उसके दूसरे दिन रविवार को मैं मौन मंदिर से बाहर आ गया और मेरी जगह एक दूसरे साधक ने उसमें प्रवेश किया।

विचित्र थे परशुरामभाई के अनुभव। भले ही प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे ही अनुभव नहीं होते, मगर उनका आधार कितना ठोस है। इस स्वप्नमय सृष्टि में हम लोग बाह्य आकृतियों और रूप रंग में बहकर कितना अमूल्य जीवन नष्ट कर देते हैं और बाद में पछताते हैं जब समय हाथ से निकाल जाता है। धन्य हैं ऐसे साधक जिनको ऐसे सद्गुरु का सहारा समय रहते मिल जाता है।

मैं उन्हें पहचान नहीं पाया था....!

यहाँ तो पूज्यश्री के दर्शनार्थ भक्त एवं जिज्ञासु आकर लाभ लेते ही हैं, परंतु पूज्यश्री से उनके प्रवासकाल में भो कई लोग अलौकिक लाभ लेते रहते हैं। एक बार तो अजीब सा प्रसंग बना।

साबरकांठा जिले में, झांझरी नाम का गांव है। वहाँ कोई साधु एक छोटे से आश्रम में लोक सम्पर्क से बहुत हदतक अछूते–से रहते थे। लोग कहते हैं, वहाँ बड़े २ मिनिस्टर आदि भी आते हैं, परन्तु बाबा दर्शन बहुत कम देते हैं उनको। एक-बार पूज्यश्री उधर से अपनी गाड़ी में गुजर रहे थे तो उन बाबा को देखने की उनकी इच्छा हुई। जब भीतर कहलवाया तो बड़ी मुश्किल से उन बाबा ने पूज्यश्री को दीवाल से सिर ऊपर उठाकर थोडी देर के लिये दर्शन दिया और भीतर चले गए। उस समय तो पूज्यश्री से आँखें चार हुई उसका कोई खास परिणाम देखने में नहीं आया, मगर बाद में बड़ी विचित्र सी घटना घटी।

कुछ ही दिन बाद दो भक्त लोग बाबा के पास पहुँचे। उनके हाथ में पूज्यश्री की एक छोटी सी पुस्तक 'अमीं झरणां' थी। उसके मुखपृष्ठ पर छपे हुए पूज्यश्री के चित्र पर ज्योंही बाबा की नजर पड़ी तो वे चमक कर बोल उठे–

एक मोह के कारणे भरत धरि दो देह,
ते नर कैसे छूटी है जिनके बहुत सनेह।

अरे! ये वे ही मोटेरा वाले महाराज आशारामजी हैं क्या?" ओह् उन्होंने तो मुझे परेशानी में डाल दिया है! एक बार इधर से गुजरे थे तो मैं उन्हें पहचान नहीं पाया और उनसे कोई बातचीत भी नहीं की। परन्तु जब वे चले गए तो अब उनकी महानता का पता चलता है। उनके जाने के बाद जब मैंने दीपक जलाना चाहा तो घी अपनी जगह पर नहीं मिला, रुई अपनी जगह पर नहीं मिली। जब मैं ध्यान में बैठा तो ध्यान में मेरे गुरुदेव प्रत्यक्ष होकर कहने लगे–

'कैसी तुम्हारी साधना है? जब मैं किसी और वेश में आता हूँ तो आदर नहीं देता–पहचान नहीं पाता और बड़ा अहंकारी बन गया है आजकल तू!'

बस, तब से मेरा ध्यान–भजन योगाभ्यास आदि सब अस्तव्यस्त हो गया है। क्या तुम लोग आशारामजी महाराज को जानते हो? क्या उनको मेरा प्रणाम कहकर यहाँ आने का आमंत्रण दे सकते हो? जल्दी बलाओ! उन्हें कहना कि मैंने आपको उस वक्त पहचाना नहीं था। आपका अनादर किया– उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।....और अब एक बार मेरी कुटिया पर अवश्य पधारकर उसे पावन करें।"

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस;
बहुत पसारा जिन किया, वे भी गए निराश।

यह संदेश प्राप्त कर पूज्यश्री कहीं से लौटते हुए मार्ग में फिर से उनके आश्रम पर पधारे। वे बाबा दौड़े दौड़े बाहर आए और पूज्यश्री को बड़े पूज्य भाव से भीतर ले गए। जहाँ किसी को नहीं आने देते थे उस ध्यान कुटीर में पूज्यश्री को ले जाकर बाबा ने अपने ऊँचे आसन पर पूज्यश्री को बिठाया और स्वयं बडे ही श्रद्धा भाव से सामने भूमि पर बैठे। बाद में पूज्यश्री ने बताया वह इस प्रकार है–

"उन बाबा ने फिर मुझसे कई योग सम्बन्धी व्यावहारिक कठिनाइयों का हल पूछा। वह बताने के बाद मैंने उनको योग-वासिष्ठ में वर्णित 'चुडाला–शिखरध्वज'-आख्यान भी सुनाया। वे तो मुझे छोड़ ही नहीं रहे थे। कह रहे थे कि जो आनन्द बहुत देर तक ध्यान आदि करने से नहीं आता है वह इस समय आ रहा है।

अहा! इस प्रकार के कई लोग अपनी अपनी जगह पर साधना करते हैं, मगर उनको सुयोग्य पक्षप्रदर्शक गुरु नहीं मिले अथवा मिलने के बाद वियोग ही जाय तो शिष्य कितना निराश्रित सा हो जाता है! हमने भी खूब ध्यान–पूजा, योग–तप आदि किया था, मगर शांति अभी दूर थी। और कई वर्ष बाद जब

क्या करिये क्या जोडिये, थोड़े जीवन काज;
छोडी छोडी सब जात है–देह, गेह, धन, राज।

सद्गुरुदेव से भेंट हो गई तो फिर....फिर तो सारी कठिनाईया हल हो गई। अब तुम लोग कहते हो कि बापू, आप तो हर समय मौज में रहते हैं। भाई यह मौज इतने सस्ते में नहीं मिली है। इसी के लिये तो राजा, महाराजा राज छोड़कर जंगलों की खाक छाना करते थे!

तुम लोग भी ज्यादा अनुकूलताओं की अपेक्षा नहीं करो। अपनी साधना में नहीं लगे हों तो लग जाओ और लगे हो तो शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़ो, क्योंकि इस देह का क्या भरोसा? कब तक टिकेगी...!"

वस्तुतः पूज्यश्री के जीवन सम्बंधी ऐसे प्रेरणास्पद प्रसंग साधक वर्ग के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

योग साधना कितना रहस्यपूर्ण विषय!

"कुछ नहीं। जिस बात के लिये मैं यहाँ आया था वह पूरी नहीं होगी।"

"परंतु तुम कुछ समझकर बताओ तो सही कि कैसे आए थे–क्या चाहते हो?"

स्वामीजी उस व्यक्ति को बड़े प्रेम से पूछ रहे हैं। वह व्यक्ति बडा खिन्न मन बैठा था और जाने ही वाला था कि स्वामीजी की नजर उस पर पड़ गई। उन्होंने जब पूछा तो उसने बताया

आशा तो गुरुदेव की, दूजी आशा निराश;
पानी में घर मीन का, वह भी मरे पियास।

कि यहाँ भी मेरी आशा पूरी नहीं होगी। वस्तुतः बात यह थी कि जब यह आया था तब आश्रम के साधकों से आश्रम की व्यवस्था की बातें चल रही थी और वह सोचता था कि यहाँ सत्संग सुनने आए हैं, परन्तु यहाँ तो गपशप चल रही है—व्यवहार की बातें चल रही हैं। इस गलतफहमी के कारण और कुछ अपनी स्वयं की प्रकृति के कारण खिन्न-मन हो रहा था।

स्वामीजी ने उसे एक ओर बुलाया और प्रेम व आत्मीयता से उसका हाल-चाल पूछा।

वैसे तो कई दर्शनार्थी आश्रम में आते हैं तो स्वामीजी के दर्शनों के लिये कभी कभी उनको घंटों तरसना भी पडता है, क्योंकि कभी कभी स्वामीजी अपनी मौज में बैठ जाते हैं तो फिर किसी से नहीं मिलते और कभी मिलते हैं तो दिन भर मिलते ही रहते हैं लोगों से। खाना-पीना भी वैसे ही पड़ा रह जाता है। यह तो संतों की मौज की बात है।

बड़ी आत्मीयता से पूछे जाने पर वह बोला—

स्वामीजी, मैंने बहुत साधना की है। घंटों ध्यान में बैठा रहता हूँ। ध्यान में मुझे देवी-देवताओं के और अन्य ऐसे अलौकिक दृश्यों के दर्शन होते हैं कि जो पृथ्वी पर मिलना दुर्लभ तो क्या, असंभव ही समझो। परन्तु....

माया का सुख चार दिन, चाहे क्या गंवार;
सपने पायो राज धन, जात न लागे वार।

स्वामीजी—हाँ हाँ, रुको मत, कहते चलो।

व्यक्ति—परन्तु स्वामीजी मैं (आवेश में आकर) बोर (परेशान) हो गया हूँ—उन दृश्यों को बार बार देखकर। आखिर उससे आगे क्या? कभी कभी लगता है मैं देह से अलग हो रहा हूँ, परन्तु फिर घबरा कर शरीर में लौट आता हूँ। ऐसा सब चलता है। मगर मन को शांति नहीं है। कईयों से मिला, परन्तु आगे कोई रास्ता नहीं बताता। यहाँ आपका नाम सुनकर आया था, मगर आप भी यहाँ सत्संग की तो बातें नहीं कर रहे थे; इसलिये निराश-मन लौट रहा था। अब आप ही बताएं, मैं क्या करू?

स्वामीजी—हाँ SSS, तो भाई इस प्रकार कुछ बात बताओ तो समझ में आवें। शरीर के साधारण रोग का इलाज करना हो तो मनुष्य डाक्टर के पास कितने धक्के खाता है—अपना समय और पैसा भी लगाता है और एक तुम हो कि आध्यात्मिक रोग मिटाना है और थोडा भी धैर्य नहीं रखते।

व्यक्ति-स्वामीजी, मेरे से भूल हुई है क्षमा करें। दूसरी बात यह है कि मैं साधना कर करके परेशान हो गया हूँ और वास्तविक सुख मिलता नहीं। इस कारण काफी उद्विग्न हो गया हूँ। आप बताएं मैं क्या करुँ?

अकथ कथा मनकी बड़ी, कहे कबीर समुझाय;
मन को जो कोई परख ले, ताको काल न खाय।

स्वामीजी (समझाने के स्वर में)—देखो, अब तुम सुनने की स्थिति में आ गए हो। तुम कहाँ गलती कर रहे हो, वह तुमको बताता हूँ। शांति पाने लिये भी थोडी शांति चाहिये। एक तो तुम यह बात मन से निकाल दो कि मैं बहुत साधना करता हूँ—मैं ऊँचा साधक हूँ—आदि। इससे अहंकार बढ़ता है और अहंकार दुःख का जनक है। **साधना का फल होता है नम्रता। यदि नम्रता नहीं आती और अहंकार बढता है तो समझो साधना गलत रास्ते जा रही है।**

दूसरी बात और जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है वो यह कि तुमको वेदान्त का सत्संग और किसी तत्त्वनिष्ठ महापुरुष का संग नहीं मिला है। इसलिये तुम साधना तो करते हों, मगर तुम्हारा मोह, राग—द्वेष, काम-क्रोध आदि कम नहीं हो रहे—उस ओर तुम्हारा ध्यान ही नहीं जाता। इसलिये जब तुम्हारा सूक्ष्म शरीर बाहर निकलता है साधना—बल से तो शरीर और परिवार—मित्रों आदि के प्रति जो मोह और राग है उस कारण से तुम दूर नहीं जा पाते और घबरा कर लौट आते हो। फिर साधना नहीं बढ़ती—समझे कि नहीं?

व्यक्ति (नम्र भाव से)—जी ऽऽऽ।

स्वामीजी—तो राग—द्वेष, आसक्ति, मोह, ममता ये सब बार

जब में था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहीं;
प्रेम गली अति सांकरी, तां में दो न समाहीं।

बार वेदान्त का सत्संग सुनने और किसी तत्त्वनिष्ठ महापुरुषका संग करने से कन्ट्रोल में आते हैं। इसीलिये कहते हैं, सत्संग महाधर्म है। अतः अब सोच लो कि तुम्हें क्या करना चाहिये, नहीं तो खाली योग कर कर के तो तुम और उद्विग्न हो जाओगे या कुछ मन सूक्ष्म होने से थोडा चमत्कार तुम्हारे द्वारा जाने अनजने हो गया तो तुम्हारा अहंकार और दृढ़ हो जायगा।....

इसी प्रकार स्वामीजी ने और भी कुछ बातें उसको समझाई और प्रसाद दिया। आते समय वह बड़ा उदास—उदास था, अब जाते समय वह बड़ा प्रफुल्लित है।

'योग—साधना' वस्तुतः कितना रहस्यपूर्ण और सावधानी न हो तो खतरनाक विषय है। बिना योग्य मार्ग—दर्शन के कितने ही साधक भटक जाते हैं—यह उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वाह, धन्य है महापुरुषों की करूणा कि वे किसी को फटकार कर तो किसी को प्रेम देकर साधना—पथ पर आगे बढाते रहते हैं!

मुझे एक से दो बना दिया

आश्रम में आने वाले भक्तों एवं साधकों के साथ कई बार ऐसी चामत्कारिक घटनाएँ घटती हैं कि जनसाधारण को एकाएक विश्वास नहीं आता। परन्तु आध्यात्मिक जगत का भी अपना

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहीं;
सीस उतारे भुई धरे, ते पैठे घर माहीं।

एक विज्ञान है जिस में प्रकृति के सामान्य नियमों का उल्लंघन प्रायः देखा जाता है–और तभी तो उन्हें चमत्कार कहा जाता है।

आश्रम में एक बूढ़ा सेवा भावी काका हर रविवार को आया करता है। नाम है उसका मंधनदास घनश्यामदास (जूना 'जी' वार्ड–मकान नं० २०१, कुबेरनगर)। उन्होंने एक दिन बताया (उसी के शब्दों में)–

थोड़े दिन पूर्व मेरी साली का देहांत हुआ था। मेरा नियम है कि मैं हर रविवार को आश्रम आता ही हूँ। यदि शरीर बीमार और अशक्त हो अथवा शहर से बाहर गया हुआ होऊँ, तो नहीं आ पाता। अन्यथा आता ही हूँ।

उस दिन रविवार को घर पर छोटे लडके को कह कर आया था कि आज ससुराल में 'बेसना' है, अगर सत्संग में मुझे देर हो जाय और जल्दी नहीं लौट पाऊँ, तो तुम अवश्य चले जाना। आश्रम में आकर मन में निर्णय किया कि ४ बजे यहाँ से चला जाऊँगा और 'बेसना' में पहुँच जाऊँगा। मगर सत्संग ऐसा चला कि उठ नहीं पाया और ५-३० यहीं बज गये। ५-३० बजे ही 'बेसना' का भी समय था।

अब तो कुछ भी नहीं हो सकता था। देर हो ही चुकी

जहाँ प्रेम तहां नेम नहीं, तहां न बुद्धि व्यवहार;
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथिवार।

थी। मैंने मन ही मन पूज्य श्री को करूण हृदय से प्रार्थना की कि

'बापू! मैं तो यह व्यवहार साली की मृत्यु के बाद वहाँ बैठने जाने का निभा नहीं सकता, क्योंकि सत्संग में देर हो गई है। कितना ही जल्दी जाऊँ तो भी वहाँ नहीं पहुँच सकता। अब मेरी इज्जत–बदनामी सब तेरे हाथ में है। आप अन्तर्यामी हो बापू! आप सर्व समर्थ हो....अब आप जानो–डुबाओ अथवा तैराओ।'

उसके बाद आधा घंटा और बीता। करीब ६ बजे मैं यहाँ से चला और ७–३० बजे घर पहुँचा। लड़के को पूछा कि तुम बेटा वहाँ बैठने गए थे? वह बोला–'नहीं'। इतने में मेरे एक अन्य मित्र उधर से निकले। उन्होंने कहा–

"वाह काका! यह क्या पूछते हो? अभी तो तुम वहाँ थे। यह क्या मजाक करते हो बिचारे बच्चे के साथ? तुम वहाँ थे ही तो बच्चा आवे न आवे। उसकी क्या जरूरत भी है?'

मैंने कहा–"भाई मैं तो अभी सीधा आश्रम से चला आ रहा हूँ....!"

उन मित्र ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया और हंसते हुए चले गए। अब मैं 'ई' वार्ड में मेरे साढु भाई के घर गया। वहाँ कुछ अन्य लोग भी बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे देखते ही कहा–

" क्यों भाई ! आप अभी अभी तो यहाँ से गए थे । फिर वापस क्यों आए ? "

मैंने कहा–" नहीं–नहीं, मैं तो अभी–अभी सीधा आश्रम से लौटा हूँ । "

इतने में एक दूसरे भाई बोले-

" मंघनमल ! तुम हमको धोखा नहीं दे सकते । मेरे पास ही तुम बैठे थे । छोड़ो अब मजाक की बातें । बाकी एक बात कहता हूँ कि आज तुमने मौके पर सत्संग की और आत्मा अमर है–आदि बातें बडे प्रभावशाली ढंग से बताई । सभी आपकी प्रशंसा कर रहे थे । हमको यह खबर नहीं थी कि जितने आप ऊपर दिखते हो इतने के इतने जमीन में भी हो । "

ये सब बातें सुनी तो मेरी आँखें ' बापू ' की याद करके सजल हो उठी । मैंने भीतर ही भीतर कहा–वाह मेरे प्रभु, मेरे लिये आपको मेरा रूप धर कर वहाँ बैठने जाना पड़ा ! बापू आपकी लीला अपार है । फिर मैं सिंधी भाषा में बोल उठा :

" परमात्मा आहे, केर चहे तो ना हे ? आहे....आहे.... आहे (परमात्मा है, कौन कहता है ' नहीं है ' ?....हैं है है ।)

कहते हैं, भगवान का एक भक्त नाई एक बार राजा के पास उसकी दाढ़ी बनाने नहीं जा पाया था तो भगवानने स्वयं

यह कार्य उसका कर दिया था । अब तक यह बात सुनी जा रही थी । यहाँ इस प्रकार की घटना स्वयं लोगों ने देखी । वाह, धन्य है भक्त की भावना और धन्य है भगवान या सद्गुरु की दिव्य कृपा !

आश्रम में इस प्रकार के साधकों एवं भक्तों के कई अनुभव प्रतिदिन देखे एवं सुने जाते रहते हैं ।

मिटने से मिलता है बनने से नहीं

आश्रम में नीरव शांति है । स्वामीजी लान में टहलते हुए एक जगह छोटे बड़ के नीचे लान पर ही बैठ गए हैं । पास में ही सिमेंट का बांकडा लगा हुआ है जिस पर उनका दाहिना हाथ टिका हुआ है । स्वामीजी इस समय कपड़े के नाम पर केवल चड्डी पहने हुए हैं । एकाएक उनको देख कर कौन कह सकता है कि यह नंगे बदन साधारण सी सफेद चड्डी पहने हुए कंगाल से दिखने वाले फकीर अपने अन्दर असीम ईश्वरीय शक्ति का खजाना छिपाए हुए हैं । जिसने एक बार भी स्वामीजी को नहीं देखा ऐसा व्यक्ति पूज्यश्री को इस अवस्था में देखकर धोखा खाए बिना नहीं रह सकता । और हुआ भी ऐसा ही ।

एक व्यक्ति आश्रम का फाटक खोल कर अन्दर प्रवेश करता है । पहले इधर उधर दृष्टि दौड़ाता है, फिर स्वामीजी के पास जाकर खड़ा हो जाता है । वह स्वामीजी को पहचान तो

जाता है, मगर शरीर से ही, उनकी महानता से पूर्ण अनभिज्ञ रह जाता है–यह उसके आचरण से ही प्रतीत हो रहा है। वह खडे खडे ही बोलता है–

"मैं योग के बारे में आपसे कुछ चर्चा करने आया हूँ। क्या मैं इधर बैठ सकता हूँ ?"

"हाँ हाँ बैठो, या इधर यह बांकडा पड़ा है इस पर बैठो।" स्वामीजीने बांकडे की ओर संकेत करके कहा।

बिना संकोच के वह व्यक्ति बांकडे पर बैठ जाता है।

कैसी विसंगति बन गई है !

स्वामीजी नीचे बैठे हैं और वह ऊपर बैठा है। हर समय अपनी चतुर बुद्धि का ढोल पीटने वाला मनुष्य ऐन वक्त पर विवेक करना भूल जाता है। कैसा दुर्भाग्य है मनुष्य का।

सर्वत्र अपना ही आपा देखने वाले महापुरुषों को इससे क्या, कि कौन ऊपर बैठा या नीचे बैठा है !

स्वामीजी तो अपने विनोदी स्वभाव के अनुसार मुस्कराते हुए उससे बोले–भाई, हमको तो पता नहीं कि योग–वियोग क्या होता है। मैं आपसे क्या चर्चा कर सकूँगा ?

वह–तो इधर की समिति द्वारा प्रसारित जो पुस्तकें मैंने देखी हैं और अखबारों में भी आपके साधना जीवन एवं सत्संग के लेख–स्तंभ पढे हैं वे फिर ऐसे ही....।

स्वामीजी (बिल्कुल अनजान से बनकर) वे तो ये लोग छपाते रहते हैं। इनसे मिलो आप...।

और ऐसा कहकर स्वामीजी उसको लेखक की ओर संकेत करके भेज देते हैं। स्वामीजी तो मुस्कुराते हुए अपनी कुटिया में पधार जाते हैं और वह आकर लेखक से पूछता है–

वह–क्यों भाई, स्वामीजी तो कहते हैं कि वे योग के बारे में कुछ नहीं जानते। आप....!

लेखक (कुछ रुष्ट से एवं हास्य मिश्रित स्वर में)–तो और क्या कहेंगे ? आपने पूछा ही इस ढंग से था ! एक गल्ती तो आपने ये की कि आप स्वामीजी से भी ऊँचे आसन पर बैठ गये। दूसरे आपने कहा कि मुझे आपके साथ कुछ चर्चा करनी है योग के बारे में। सीखना तो कुछ था नहीं आपको ! तो स्वामीजी से आप कुछ लाभ नहीं उठा सके।

ज्यों ही उस व्यक्ति को अपनी गलती मालूम हुई तो वह कुछ चौंका। मगर अब क्या हो ! स्वामीजी कुटिया में पधार चुके थे और कब बाहर पधारेंगे यह कहा नहीं जा सकता था।

और लेखक उसकी ओर देखते हुए सोचने लगा–जो व्यक्ति हृदय एवं स्वभाव से सरल है, कुछ बनकर नहीं आता है वह संतों से अच्छा आध्यात्मिक लाभ उठा लेता है जबकि कोई बना ठना, अपनी बुद्धि का और अपने बनावटी व्यक्तित्व का अभिमानी व्यक्ति ऐसे ही रह जाता है।

पूज्यश्री की अमृतवाणी के अन्य संकलन

वास्तविक जीवननो राह		गुजराती	१-२५
व्यवहारमां वेदान्त		,,	१-५०
जीवनना अजवालां		,,	१-५०
आतम दीप जगावो		,,	१-५०
अमी कटोरो		,,	१-५०
सत्संग सुवास		,,	१-५०
सत्संग सरिता		,,	०-५०
सत्संग निर्झर		,,	०-५०
अमृत निर्झर		,,	१-५०
सहजवाणी (भाग १ से ६ तक)		हिन्दी	५-१०
दिव्य जीवन की ओर		,,	०-६०
सुख दुःख से परे		,,	१-५०
परम सुख की ओर		,,	१-५०
जागो, अपने आप में		,,	१-२५
सत्संग कणिका		,,	०-४०
नारी धर्म		,,	०-५०
योगलीला		,,	६-५०
फकीरी मौत		,,	१-००
योग अमृत		,,	१-७०
संतवाणी		सिंधी	१-००
संत अंई साईंजा सबाझा		,,	१-००
सत्संग सरिता		,,	१-००
संतवाणी (पद्य)	अन्य	हिन्दी	१-२५
सुखमनी ,,	,,	सिंधी	४-००
ब्रह्मबावनी ,,	,,	गुजराती	१-००

ॐ योग अमृत ॐ

"यदि मौत पर विजय प्राप्त करनी हो–जीवन को सही तरीके से जीना हो–निर्भय जीवन जीना हो तो फकीरों के कहे अनुसार आसन करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो, योग करो, आत्म–चिंतन करो और ऐसा पद प्राप्त कर लो जहाँ मृत्यु की पहुँच नहीं है।

सबसे बड़ा पाप है अपने को दुर्बल समझना। तुम देवों के देव हो, शाहों के शाह हो। जरा अपने भीतर तो झांको, अपनी सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव करो, आत्म-साक्षात्कार करो और निर्भय हो जाओ।

साधना करके उस शाश्वत्–पदमें आरूढ हो जाओ जहाँ से जीवन भी देखा जा सके और मौत भी देखी जा सके।"

– पूज्यश्री

इस पुस्तकमें पूज्यश्री की योग-साधना विषय पर अनुभव सिद्ध वाणीका कुछ महत्त्वपूर्ण अंश संकलित है। कितने ही साधक आज पूज्यश्री का सांनिध्य लाभ लेकर अपना साधना–पथ प्रशस्त करके अपना जीवन सार्थक बना रहे हैं।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसाराम आश्रम
मोटेरा रोड़ साबरमती अहमदाबाद